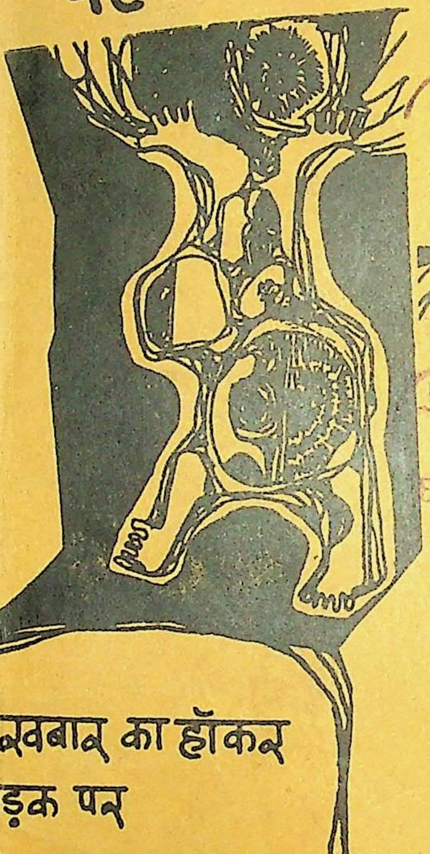
पहल · 20



अखबार का हॉकर
सड़क पर
चिल्ला रहा था
कि जनता ने
सरकार का विश्वास
खो दिया है

और अब ये विश्वास
दिन-दूनी और
रात-चौगुनी मेहनत
करने पर
ही जीता जा सकता है
(परिश्रम के अलावा और
कोई रास्ता नहीं)
मेरी राय है
कि सरकार
इस जनता को
भंग कर दे और
अपने लिए दूसरी
जनता चुन ले

• ब्रटोल्ट ब्रेख़्त

पहल/20

इस महादेश के वैज्ञानिक विकास के लिये प्रस्तुत
प्रगतिशील रचनाओं की अनिवार्य पुस्तक

कविता युग को नब्ज धरो
अफ्रीका, लातिन अमेरिका,
उत्पीड़ित हर अंग एशिया
आदम खोरों की निगाह में
खंजर सी उभरो
जनमन के विशाल सागर में
फैल चलो झंझा के स्वर में
चरण-चरण विप्लव की गति दो
लय लय प्रलय भरो
श्रम की मुठ्टी में गल-गल कर
जग के मुक्ति-अर्थ में ढ़ल कर
बन स्वच्छन्द सर्वहारा के
ध्वज के संग लहरो
शोषण छल-छन्दों के गढ़ पर
टूट पड़ो नफरत सुलगा कर
क्रुद्ध अमन के राग, युद्ध के
पन्नों से गुजरो
उल्टे अर्थ- विधान तोड़ दो
शब्दों से बारूद जोड़ दो
अक्षर···अक्षर पंक्ति पंक्ति को
छापामार करो

—गोरख पांडे

अंक : सितम्बर 1982/ संपादन, संचालन पूर्णत : अवैतनिक
संपादक/ज्ञानरंजन, कमला प्रसाद
संपर्क/763, अग्रवाल कालोनी, जबलपुर/एक 40, कोठारी कामप्लेक्स, शिवाजी नगर, भोपाल
मूल्य एक प्रति/6.00 चार अंकों के लिये 15.00
प्रकाशक/"पहल", 763 अग्रवाल कालोनी, जबलपुर
मुद्रक/सिंघई प्रिंटर्स, जबलपुर
आवरण/जयन्त देशमुख :

इस अंक के रचनाकार

शीतेन्द्र नाथ चौधुरी : 1943 में बंगला देश के जिला मेमनसिंह में जन्म। पेंड्रा रोड, बिलासपुर में भौतिकी के अध्यापक। 1979 से लेखन। श्रीमती चौधरी की कहानियां लिखती हैं। छत्तीसगढ़ में पिछले वर्षों में आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ की तीन वर्कशाप में भागीदारी। किसी साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित पहली कहानी।

शंकर : जन्म 1948, शिक्षा एम० ए० तक। सासाराम से प्रकाशित "अब" पत्रिका का सम्पादन। गया प्रगति–शील लेखक सम्मेलन के बाद मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित।

जवाहर सिंह : बिहार के एक गांव में जन्म। 1967 से लेखन। अब तक हिन्दी की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में 80 से अधिक कहानियां प्रकाशित। इम्फाल, मणिपुर में हिन्दी अध्यापन।

प्रकाश कांत : 26 मई 1970 को एक पुलिस कर्मी के घर जन्म। एम० ए० की शिक्षा देवास में रह कर पूरी की। कवि नईम का गहरा सम्पर्क मिला। रांगेय राघव के ऊपर शोध करने के बाद एक मिडिल स्कूल में मास्टरी। पहली कहानी 1970 में "नई कहानियां" में छपी। अभी अनेक कहानियां अप्रकाशित।

अनवर शमीम : मजदूर वर्ग से आये और उन्ही के बीच काम करते हैं। मजदूरी करते हुये बी० ए० की शिक्षा पूरी की। धनबाद में कई जन मंचों पर सक्रिय।

दानिश जमाल सिद्दीकी : "जंगल हरा हैं" कविता संग्राह अभी प्रकाशित हुआ। वाराणसी प्रगतिशील लेखक संघ में कार्यकर्ता।

इसके अलावा जसवीर चावला (धनबाद) सलीम खान (धमतरी) और जीवन पदु (खैरागढ़) की कविताएं भी इस अंक में नये रचनाकारों के रूप में प्रस्तुत की गई।

स्व० सोहन सिंह जोश, भगवतशरण उपाध्याय, रघुपति सहाय फिराक़, भगवतीचरण वर्मा, मलयज, चेरबंड राजू, कामिल बुल्के, पोटे्क्कार की स्मृति में।

क्रम : पहल–20

परिशिष्ट

जरूरी सूचनाएं

कृपया "पहल" की सहयोग राशि का नवीनीकरण यथाशीघ्र करवा लें अन्यथा मांग की पूर्ति कर पाना हमारे लिये मुमकिन नहीं होगा। अपने पाठकों की गहरी रुचि और लगातार बढ़ती हुई मांग के कारण हम सब दूर "पहल" की प्रतियां पर्याप्त संख्या में नहीं दे पा रहे हैं। इसलिये हमने इस वर्ष मध्य प्रदेश लोक शिक्षण संचालनालय की 400 प्रतियों की खरीद के आदेश को अस्वीकार कर दिया। पिछले साल हम इसी तरह 900 प्रतियों के आदेश को नामंजूर कर चुके हैं। "पहल" पाठक प्रमुख बने और सही हाथों पहुंचे यही हमारी कोशिश है।

एक वर्ष की सहयोग राशि 15.00 धनादेश से भेजें। पुराने अंकों के लिये न लिखें।

मध्य प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ की किताब क्लब योजना की पहली किताब स्व. शरद बिल्लौरे की कविताएं "तय तो यही हुआ था" छप कर जारी हो चुकी हैं। दूसरी किताब तैयारी में है और अक्टूबर में रिलीज हो जाएगी।

म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ महत्व आयोजनों के अन्तर्गत भीष्म साहनी पर ग्रंथ छप कर आ गया है। वाणी प्रकाशन दिल्ली के सहयोग से वह छपा है और नये रचनाकारों तथा शोध कर्ताओं के लिये उपयोगी है। केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और नागार्जुन पर ये ग्रंथ तैयारी में हैं। ये दुर्लभ सामग्री वाले संकलन होंगे और इनके प्रकाशन की व्यवस्था हो चुकी है। रामविलास शर्मा पर महत्व कार्यक्रम फरवरी 83 में सम्पन्न होगा।

जबलपुर-कटनी प्रगतिशील लेखन संघ की मुख पत्रिका "यात्रा" का पहला अंक जारी हो चुका है। दूसरा अंक तैयारी में है। कृपया श्री अनिल खम्परिया, कृष्ण कुटीर जालवा देवी वार्ड, कटनी से सम्पर्क करें।

इसी प्रकार "इसलिये" नये रूप में जारी हो चुका है। नवीन सागर की महत्वपूर्ण कहानी और सुदीप बेनर्जी एवं ध्रुव शुक्ल की कविताओं के लिये "इसलिये" का अंक संग्रहणीय है। सम्पर्क : राजेश जोशी, एम. आई. जी. 99 सरस्वती नगर भोपाल।

एक नये आयोजन

"पहाड़" के लिये हम आपसे आग्रह करते हैं कि पुष्पेष पंत और शेखर पाठक से यामा, रोहिला लाज, नैनीताल के पते पर सम्पर्क करें। यह पत्रिका समाज, संस्कृति और पर्यावरण पर केन्द्रित होगी तथा जनवादी सोच से युक्त।

महमूद दरवेश की 7 कविताएं

महमूद दरवेश फिलिस्तीनी प्रतिरोधी साहित्य के प्रतिनिधि कवि हैं। दरवेश बचपन से ही इस्राइल अधिकृत फिलिस्तीनी क्षेत्र में रहे। वहां इन्होंने अरब नागरिकों पर यहूदियों द्वारा ढाये गये अत्याचारों को अपनी आंखों से देखा। इसीलिए इनकी कविता में इस्राइल के बर्बर अत्याचारों के प्रति फिलिस्तीनियों के मुखर प्रतिरोध का सशक्त चित्रण मिलता है। दरवेश का अपना काव्य-मुहावरा है, अपनी भाषा, अपने बिम्ब और अपना शिल्प है, जो उन्हें उनके समाज से जोड़ता है। महमूद दरवेश के शब्दों में—"मेरी कविता की अभिव्यक्ति तभी सार्थक हो सकती है, जब उसमें मेरी ज़मीन का जर्रा-ज़र्रा बोले; वहाँ की चट्टानें, पहाड़, घाटियां, ध्वंसावशेष अपनी बात कहें; मेरे साथियों के हाथों में पड़ी जंजीरें झनझनायें और जिसे पढ़कर पाठकों के मस्तिष्क में मेरे नागरिकों के कष्टों और पीड़ाओं का संघर्षपूर्ण स्पष्ट चित्र बने।"

महमूद दरवेश 1970 में एफ्रो-एशियाई लेखकों की चौथी कान्फ्रेंस में हिस्सा लेने के लिए भारत आ चुके हैं जिसमें उन्हें लोटस पुरस्कार से विभूषित किया गया था। प्रस्तुत कविताओं का अनुवाद अनिल जनविजय ने अंग्रेजी से किया है।

चुनौती

तुम मुझे चारों तरफ से बांध दो
छीन लो मेरी पुस्तकें और चुरुट
मेरा मुंह धूल से भर दो
कविता मेरे स्पन्दित हृदय का रक्त है
मेरी रोटी का खारापन, मेरी आँखों की तरलता

यह लिखी जाएगी नाखूनों से
आंखों के कोटरों से, छुरों से

मैं इसे गाऊंगा
अपनी क़ैद-कोठरी में, स्नानघर में
अस्तबल में चाबुक के नीचे
हथकड़ियों के बीच जंजीरों में फंसा हुआ
लाखों बुलबुल मेरे भीतर हैं
मेरे द्वारा
मेरा संघर्षशील गीत गाने के लिए

एक आदमी के बारे में

उन्होंने उसके मुंह पर जंज़ीरें कस दीं
मौत की चट्टान से बांध दिया उसे
और कहा—तुम हत्यारे हो ।

उन्होंने उससे भोजन, कपड़े और अण्डे छीन लिए
फेंक दिया उसे मृत्यु-कक्ष में
और कहा—तुम चोर हो ।

उसे हर जगह से भगाया उन्होंने
उससे प्यारी छोटी लड़की को छीन लिया
और कहा—तुम शरणार्थी हो ।

अपनी जलती आंखों
और रक्तिम हाथों को बताओ
रात जाएगी
कोई क़ैद, कोई जंजीर नहीं रहेगी
नीरो मर गया था, रोम नहीं
वह लड़ा था अपनी आंखों से ।

एक सूखी हुई गेहूं की बाली के बीज़
भर देंगे खेतों को
करोड़ों-करोड़ हरी बालियों से ।

गुस्सा

काले हो गये
मेरे हृदय के गुलाब
मेरे होठों से निकलीं
ज्वालाएं वेगवती
क्या जंगल, क्या नर्क
क्या तुम आए हो
तुम सब भूखे शैतान !

हाथ मिलाये थे मैंने
भूख और निर्वासन से
मेरे हाथ क्रोधित हैं
क्रोधित है मेरा मुंह
मेरी रगों में बहते रक्त में गुस्सा है
मुझे कसम है अपने दुख की

मुझसे मत चाहो मरमराते गीत
फूल भी जंगली हो गये हैं
इस पराजित जंगल में

मुझे कहने हैं अपने थके हुए शब्द
मेरे पुराने घावों को आराम चाहिए
यही मेरी पीड़ा है

एक अन्धा प्रहार रेत पर
और दूसरा बादलों पर
यही बहुत है कि अब मैं क्रोधित हूं
लेकिन कल, आएगी क्रान्ति

आशा

बहुत थोड़ा सा शहद
बाकी है तुम्हारी तश्तरी में
मक्खियों को दूर रखो
और शहद को बचाओ ।

तुम्हारे घर में
अब भी है एक दरवाजा
और एक चटाई ।
दरवाजा बन्द कर दो
अपने बच्चों से दूर रखो
ठंडी हवा ।

यह हवा बेहद ठंडी है
पर बच्चों का सोना जरुरी है
तुम्हारे पास शेष है अब भी
आग जलाने के लिए कुछ लकड़ी
कहवा
और लपटों का एक गट्ठर ।

लोगों के लिए गीत

आओ ! दुख और जंजीरों के साथियों
हम चलें, कुछ भी न हारने के लिए
कुछ भी न खोने के लिए
सिवा अर्थियों के ।

आकाश के लिए हम गायेंगे
भेजेंगे अपनी आशायें
कारखानों में, खेतों में, खदानों में

हम गायेंगे और छोड़ देंगे
अपने छिपने की जगह
हम सामना करेंगे सूरज का ।

हमारे दुश्मन गाते है
"वे अरब हैं, क्रूर हैं"

हां, हम अरब हैं ।
हम निर्माण करना जानने हैं
हम जानते हैं बनाना
कारखाने, अस्पताल और मकान
विद्यालय, बम और मिसाइल
हम जानते है
कैसे लिखी जाती है सुन्दर कविता
और संगीत...
हम जानते हैं ।

जांच–पड़ताल

लिखो—
मैं एक अरब हूँ
कार्ड नम्बर–पचास हजार
आठ बच्चों का बाप हूँ
नौवां अगली गर्मियों में आएगा
क्या तुम नाराज हो ?

लिखो—
एक अरब हूँ मैं
पत्थर तोड़ता हूँ
अपने साथी मजदूरों के साथ
हां, मैं तोड़ता हूँ पत्थर

अपने बच्चों को देने के लिए
एक टुकड़ा रोटी
और एक किताब

अपने आठ बच्चों के लिए
मैं तुमसे दान नहीं मांगता
घिघियाता, रिरियाता नहीं तुम्हारे सामने
तुम नाराज हो क्या ?

लिखो—
अरब हूँ मैं एक
उपाधि–रहित एक नाम
इस उन्मत्त विश्व में अटल हूँ
मेरी जड़ें
गहरी हैं
युगों के पार
समय के पार तक

मैं धरती का पुत्र हूँ
विनीत किसानों में से एक
सरकंडे और मिट्टी के बने
झोंपड़े में रहता हूँ
बाल काले हैं
आंखें–भूरी
मेरी अरबी पगड़ी
जिसमें हाथ डालकर खुजलाता हूँ
पसन्द करता हूँ
सिर पर लगाना एक चूल्लू तेल

इस सब बातों के ऊपर
कृपया यह भी लिखो—

मैं किसी से घृणा नहीं करता
किसी को लूटता नहीं
लेकिन जब भूखा होता हूँ मैं
खाना चाहता हूँ गोश्त अपने लुटेरों का
सावधान
सावधान मेरी भूख
मेरे क्रोध सावधान

मैं घोषणा करता हूँ

जब तक
मेरी एक बालिश्त ज़मीन भी शेष है
एक जैतून का पेड़ हैं मेरे पास
एक नीम्बू का पेड़—
एक कुआं—और एक कैक्टस का पौधा

जब तक
मेरे पास एक भी स्मृति शेष है
पुस्तकालय है छोटा सा
दादा की तस्वीर है—और एक दीवार

जब तक
उच्चारित होंगे अरबी शब्द
गाये जाते रहेंगे लोकगीत
पढ़ी जाती रहेंगी, कविता की पंक्तियाँ
अनतार-अल-अब्से की कथाएँ
फारस और रोम के विरुद्ध लड़े गये
युद्धों की वीरगाथाएं

जब तक
मेरे अधिकार में हैं मेरी आँखें

मेरे होंठ और मेरे हाथ—
मैं खुद हूँ जब तक
मैं अपने शत्रु के समक्ष
घोषित करूँगा—
मुक्ति के लिए प्रबल संघर्ष
स्वतन्त्र लोगों के नाम पर हर कहीं
मज़दूरों—छात्रों—और कवियों के नाम पर

मैं घोषित करूँगा—
खाने दो कलंकित रोटी
कायरों को, सूरज के दुश्मनों को
मैं जब तक जीवित रहूँगा
मेरे शब्द शेष रहेंगे—
"रोटी और हथियार
मुक्ति योद्धाओं के लिए ।।"

▣

कुछ और फिलिस्तीनी कविताएं

संयुक्त राष्ट्र संघ में चुस्त पोशाकों में सजे तमाम आदमियों से

▪ **समीह अल गासिम**

ओ हर तरफ से आये भले मानसों—
चढ़ी दोपहरी में ये तुम्हारी खूबसूरत टाईयां
और उत्तेजक चर्चाएं
हमारे इन दिनों में, भला किस काम की हो सकती है ?

ओ हर तरफ से आये भले मानसों
मेरे दिल पर उग आई है सेवार
और ढँकली है उसने सभी काँच की दीवारें
ये बहुत-सी बैठकें
और ढेर सी तकरीरें
ये जासूस, ये रंडियों की बातचीत, ये गप्पें
हमारे इन दिनों में, भला किस काम की हो सकती हैं ?

सज्जनो,
इन फालतू बातों को अपने हाल पर छोड़ दो
और आओ
मैं टूटता जा रहा हूँ दुनिया से
मेरा लहू पीला है
और दिल धँसा है वायदों के दलदल में

ओ हर तरफ से आये भले मानसों
मेरी शर्मिन्दगी एक महामारी बन जाये, मेरी तकलीफ एक साँप
ओ हर तरफ से आये काले और चमचमाते खास चमड़े के जूतो
इतना ज्यादा है मेरा गुस्सा कि बयान नहीं कर सकता
और जमाना कायर है
और जहाँ तक मेरी बात है.........मेरे हाथ नहीं हैं ।

▣

दफना दो बीते को श्रौर उठो

तौफिक जियाद

...दफना दो बीते हुए को श्रौर उठो

क्योंकि हमें यकमुश्त पीनी पड़ी
श्राखरी बूँद तक
श्रपनी यह लाल श्रौर क़ड़वी मय

श्रौर हमें क़त्ल होना पड़ा
...क़त्ल होना पड़ा एक मादा भेड़ की तरह
जब पागल हो उठी थी तारीख

श्रौर पड़ा हमें भागना भी
हंसों के झुंड-सा, भागना
श्रौर महसूसना गहरी शर्मिन्दगी

फिक्र मत करो, श्रब श्रपना गोश्त एक पुल है
इस श्रक्खड़ समुन्दर के ऊपर
उन किनारों तक जिनने दगा नहीं की हमसे
न ही कभी हमने दगा की जिनसे

ऐ मेरी सरजमीं तू
दमकते सोने की
लाल मानिकों श्रौर हाथीदाँत की
हमारी मुहब्बत है मुहब्बत से भी पक्की, श्रौर ज्यादा श्रमीर भी

तो दफना दो बीते हुए को श्रौर उठो
श्रगर कल दूर भागता है हमसे, हम उसे भागने नहीं देंगे

हम नहीं हैं चुके और हारे हुए...मगर
एक बार फिर...
हम गढ़े गये हैं नये सिरे से

मैं तुम्हें पुकारता हूँ जोर से

तौफिक जियाद

मैं तुम्हें पुकारता हूँ जोर से
मिलाता हूँ हाथ तुमसे
चूमता हूँ तुम्हारे पैरों तले की जमीन, मेरे साथियो !
तुम्हारे लिये मैं जान दूँगा, तुम्हारी खातिर मैं जिऊँगा
तुम्हारा हूँ मैं दिलो रूह से
अपनी जुदाई का मेरा दर्द बेरहम और झुलसाने वाला है
एक जिन्दा हिस्सा तुम्हारे दर्द का...मैं रहता हूँ
तुम्हारे पास में हमेशा ही, मेरे साथियो...सुनो मुझे
मैं तुम्हें जोर से पुकारता हूँ
मिलाता हूँ हाथ तुमसे

लड़ा मैं अपने वतन के खातिर
बेखौफ जूझा मैं
नंगे पाँव, चिथड़ों में, सामना किया मैंने दुश्मन का हिम्मत से
जख्मी था मैं लेकिन, झंडा लिये था जो
उसे मैंने और भी बुलन्द किया...काम आ गये मेरे दोस्तों की कब्रों पर
मैं सिर नवाता हूँ अपने खयालों में...अपने वतन से
जुदा होकर, फख्र के साथ उसे याद करता हूँ, मेरे साथियो...

मैं तुम्हें जोर से पुकारता हूँ
मिलाता हूँ हाथ तुमसे

▣

मंडूक

ऋगवेद के मंडूक सूक्त (7.103) की आत्म कविता की हिन्दी में रचना मुरलीधर कमलाकांत द्वारा

मेंढक टर्राने लगे हैं फिर
हरे मेंढक, चितकबरे मेंढक
एक नाम के कितने सारे मेंढक
सूखे मशक की तरह पड़े थे बेचारे
सरोवर में, और अब
वर्षा के पानी से अंग-अंग सराबोर है
दोहरा रहे सब
एक साथ प्रशस्तिवाचन
एक साथ इनका टर्राना, जैसे
बछड़े के साथ गायों का रम्भाना
वर्षा का पहला दिन
सरोवर के चारों ओर
ये ऐसे जमा थे, जैसे
सोमयाग में सोमपायी ब्राह्मण
हरा मेंढक पहुंचता है
चितकबरे के पास और
चितकबरा हरे के पास
आपस में मचलते हैं ऐसे
तुतलाते बच्चे
पिताजी से मचलते हैं जैसे
आवाज में आवाज मिलाकर
उछलते चितकबरे

जब बोलते है, तब याद आता है
लड़कों का मास्टरजी के शब्द दोहराना
वह देखो
इनका शरीर बढ़ने लगा है तेजी से
कोई गाय की तरह रम्भाता है
कोई बकरे की तरह मिमियाता है
शब्दों का बाजार लगाए हैं मेंढक
यहाँ बोलना - वहाँ बोलना
बात - बात में बोलते ही रहना
ओ गाय की तरह रम्भाने वाले !
तू हमारा नेता है
ओ बकरे की तरह मिमियाने वाले !
तू हमारा नेता है,
ओ चितकबरे ओ हरे मेंढक
सुना है, नियम का बड़ा पक्का है तू
साल भर तपता है
तब जाकर आनंद मनाता है तू
तू हमें वह सब कुछ दिला सकता है
जो पसीना बहाता हुआ ब्राह्मण
हवन का धुआँ खाकर भी नहीं ले पाता
तू जाएगा
तो साल भर बाद आएगा
जाते - जाते दे जा ना रे !
वही भाषण
जो तूने सरोवर के किनारे दिया था ।

अम्मा से बातें

■ भगवत रावत

अम्मा
मैंने लिखी एक और कविता

कितने बरस हो गए
तुमसे पास बैठकर बात नहीं की
तुमको कुछ भी नहीं सुनाया
बचपन में जो कुछ लिखता था
तुम्हें आज भी वैसा का वैसा याद है
सुना-सुना कर तुमको ही तो सीखा लिखना
तुम्हें छोड़कर
कोई भी विश्वास कहाँ करता था
मेरे लिखने का

वे भी कैसे दिन थे अम्मा
जब तक मैं जागा करता था
तुम जगती थीं
सारी-सारी रात
तुम्हें नींद क्यों नहीं आती थी अम्मा
मुझको पढ़ते देख तुम्हें कैसा लगता था
जोड़-जोड़ दुखते घुटने-टखने
हाथों से मलते-मलते
तुम क्या-क्या सोचा करती थीं

जब किताब के बीच छिपाकर काग़ज़

मैं लिखने लगता था कविता
तुम सब कुछ जानते हुए थी
कैसी अनजान रहती थीं
खामोशी से
मेरे चेहरे पर आती-जाती कविता को
कैसे पढ़ लेती थीं
और अंत में
तुम ही तो सुनती थीं बड़े ध्यान से
और तुम्हारे चेहरे की रेखाओं से
कितनी जल्दी लग जाता था पता
कौन सा शब्द
चावलों मैं कंकड़ सा छिपा पड़ा है

तुमने काग़ज़ कलम नहीं ली कभी हाथ में
पर कविता को कितना सही-सही पहचाना
कितने बरस हो गए अम्मा
तब तो मैं बिल्कुल लड़का था
कैसी-कैसी तुकें जोड़कर खुश होता था
नया शब्द जो भी मिलता था
नये दोस्त की तरह
खूब उससे
घुल-मिल जाने की धुन में
पागल सा फिरता रहता था

अब तो शब्दों के मेले के बीच खड़ा हूं
केवल आवाजें ही आवाज़ें बची हुई हैं
कुछ भी साफ-साफ सुन पाना बहुत कठिन है
उनके तौर-तरीके कितने बदल गए हैं
सबने अपने
घर के नाम बदल डाले हैं

सबको भागमभाग मची है
रचना-बसना दूर
एक पल हाथ मिलाना नहीं चाहते
दूर-दूर से ही मिलते हैं
कविता के अन्दर तो आते-आते ऐसे
परेशान से हो जाते हैं
जैसे अपने गांव मोहल्ले के
अनपढ़ लोगों के दिख जाने पर
भले आदमी
कटने की कोशिश में
कितना चक्कर खाते

अब दुख को ही ले लो
कैसा चिकना-चुपड़ा भेस बनाये
साधी गई पंक्ति के भीतर सज्जित
सुन्दर सा चेहरा लटकाए
ऐसा लगता है जैसे
तस्वीर खिंचाने खड़ा हुआ हो

सच अम्मा
आजकल शब्दों में
ऐसे दुख का चलन बहुत है
जिसे देखकर लगे
हाय
यह
हमें क्यों नहीं हुआ

तुम्हें याद है अम्मा
जिस दिन ताँगे वाले मम्मा का घोड़ा
मरा
कितनी जल्दी डूब गया था वह दिन

कितनी लम्बी
कितनी गहरी-काली रात
हुई थी उस दिन
कितनी रातें
मम्मा
हिलक-हिलक रोया था
कितने दिन तक
तुमसे
कौर तोड़ते नहीं बना था
कितने दिन मैं पढ़ न सका था
उस दिन
ताँगे वाले मम्मा का
घोड़ा नहीं मरा था
सब की आँखें समझ रही थीं
खुली पीठ पर
खाते-खाते चाबुक
मम्मा ने दम तोड़ दिया था

अम्मा वह था अपना दुख
कुँजड़े दर्जी नाई का दुख
धोबी का दुख
बेवा हस्सन की माँ का दुख
मिट्टी के बरतन वालों का
खपरैलों की छत वालों का
गोबर लिपे घरों का
अपना दुख था
उस दुख की तस्वीर खींचने की
हिम्मत
किसमें थी

अम्मा अब तो दुख

बज़ार में भी बिकता है
दुख के सौदागर भी बहुत हो गए ग्राजकल
बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी तक ले जाते हैं
ग्रौर जिन्हें
सब कुछ खरीदने की ग्रादत
छुटपन से ही पड़ी हुई है
उसको पहले वे खरीदते हैं
फिर थोड़ा काट-छाँटकर
रंग रोगन से उसकी चुभती सी ग्राकृति को
दर्शनीय मुद्रा देते हैं
ग्रौर इस तरह उसे
सुरुचि-सम्पन्न बनाकर
ड्राइंग रूम या कलादीर्घाग्रों में लटका कर
ग्रक्सर फुरसत में
शामों को
घंटों बहस किया करते हैं
दुख से उनको बहुत प्यार है
वे खरीदकर उसको
घर में बहुत सुरक्षित रख सकते हैं

हाँ ग्रम्मा
सच यही हाल है
ऐसी ही हालत में मैंने
लिखी एक ग्रौर कविता

कितने बरस हो गए
तुमसे पास बैठकर बात नहीं की
तुमको कुछ भी नहीं सुनाया
लिखता तो मैं रहा कुछ न कुछ इन बरसों में
लेकिन हिम्मत नहीं हुई तुम तक ग्राने की

झूठे-सच्चे नये-नये दुख
बढ़ा चढ़ाकर बतलाने की

बस इतना ही समझो अम्मा
तेरा बेटा बड़ा हो गया
पढ़ लिखकर
अपने पैरों पर खड़ा हो गया
थोड़ा काम जम गया उसका
थोड़ा उसका नाम जम गया
बड़े-बड़ों के पास आ गया
पैसा-धेला हाथ आ गया
गलियारे की
गन्दी नाली की बस्ती से
कूद-फाँदकर
बिजली वाले पंखे वाले
पक्के घर तक दौड़ लगाते
देखो अम्मा
बाल सफेद हो चले उसके

इससे ज्यादा
इससे हटकर
हो भी क्या सकता था अम्मा
जिस मैली-कुचली
अपढ़ और गन्दी बस्ती में
तुमने अपने मीठे दिन काटे
जिसमें मैंने
अपनी मसें भीगते देखीं
किसी एक दिन
उस बस्ती में
उजली-झक्क-धुली पोशाक पहनकर

हम ग्रायेंगे
लोग हमें पहचानेंगे
पर उतने पास नहीं ग्रायेंगे
उनकी ही जैसी बोली में
उनसे जब हम
पूरी बात न कर पायेंगे
उनकी ग्राँखें
दो पल
हमको विस्मय से देखेंगी
बस उतनी सी देरी में हम
उन ग्राँखों में
कितने ऊपर उठ जायेंगे
इससे ज्यादा
इहसे हटकर
हमने क्या सोचा था ग्रम्मा

जिस दिन हमने वह घर छोड़ा
ग्रौर रेलवे के नल-बिजली वाले क्वाटर में
रहने चले गये थे
उस दिन तुमने वे ग्रावाज़ें नहीं सुनी थीं
जो हर घर से
उठते हुए धुएँ के साथ-साथ
बाहर ग्राई थीं

शायद उनको हम पर
पहले से ही शक़ था
सबके चेहरे लटक गए थे
सबकी ग्राखों में
कभी न मिटने वाली दूरी उग ग्राई थीं

गप्पे कक्का

भड़भड़िया थे
वे आख़िर कब तक चुप रहते
बोल पड़े थे
हमको साले बाबू लोगों से
का मतलब
हम तो
चाट बेचते हैं ठेले पर अलानियाँ
रोज कमाते हैं और रोज़ खाते हैं
हमको कहीं नहीं जाना है
इसी नीम के नीचे
अपना बाप मरा था
हमको भी मरना है।
इसी नीम के नीचे

अम्मा

जबसे हमने वह घर छोड़ा
एक ठौर पर कब रह पाये
कितने शहर चले
कितने घर बदले
लेकिन अम्मा
ऐसा क्यों है
सपना अब भी
सिर्फ उसी घर का आता है
वही पड़ौस
गालियों वाली चाची का
और रात के सन्नाटे में
उस घर से ही आती हुई
वही की वही
ऊँची-नीची आवाज़ें

सब उसको छिनाल कहते थे
क्या ज़ुबान चलती थी उसकी
कैसे
बड़े-बड़े लोगों की पोलें बतलाती थी
कैसे-कैसे लोगों की
दाढ़ी-मूँछें उखाड़कर उसने
सरे आम
उनके ही दरवाज़ों पर फेंकी
अपने हरे पेड़ जैसे शरीर में
कैसे-कैसे लोगों को उसने पनाह दी
और उन्हीं की कालिख
उनके ही मुँह पर दे मारी
भर बज़ार में

उससे अच्छे खाँ डरते थे
वह भी क्या औरत थी अम्मा
उसके सिर पर भूत चढ़ा था
सब कुछ तहस-नहस करने का
अपने को भी मिटा डालने का
जूनून उस पर सवार था
उसको था मालूम
एक दिन उसकी बुरी मौत आयेगी
इसीलिए अपनी करनी पर
उसको बिल्कुल रंज नहीं था
मरते दम तक
वह बकती ही रही गालियाँ
अपनी लकवा लगी देह पर
कभी विवश सी दृष्टि न फेंकी
मरते दम तक
उसने माफ न किया किसी को

अम्मा
वह अपनी
ग़लीज़ गन्दी बस्ती की
एक अकेली
मुँह वाली औरत थी
जिसके पास
और तरीका ही क्या था
बदला लेने का

अम्मा मैंने तुमसे कैसी बातें कर लीं
पर करता भी क्या
तुमसे ही तो
मैं सब कुछ कहता आया हूँ
कितने बरस हो गए
तुमसे पास बैठकर बात नहीं की
तुमको कुछ भी नहीं सुनाया

कविताएँ तो बहुत लिखीं
इन बरसों में मैंने
पर इन सब पर
नहीं लिख सका एक शब्द भी
लिखने बैठा जब भीं
ऐसा लगा
कि उन पर लिखकर
उन्हें बेचने की कोशिश तो नहीं कर रहा
उनकी तकलीफों को मढ़वाकर किसी फ्रेम में
उस पर अपना नाम लिखाने की
कोशिश तो नहीं कर रहा

कितने बरस हो गये

तुमसे पास बैठकर बात नहीं की
तुमको कुछ भी नहीं सुनाया

हाँ अम्मा
वह कविता
जो नई लिखी है मैंने
अब की बार
ज़रूर
उसे साथ लाऊँगा

विचार विमर्श

एक साहित्यकार की प्राथमिक जिम्मेदारी

■ आत्माराम

इस विषय के सम्बंध में सबसे पहले सवाल उठता है : साहित्य जो जन समुदाय की विचारधारा का हो या यूँ कहें कि साहित्य जो जन जन के लिए उसके नेतृत्व को स्वीकारते हुए लिखा जाय, कैसा हो ? उसका स्वरूप क्या होना चाहिए ? यह सवाल हमें साहित्य की उत्पादन प्रक्रिया में साहित्यकार की भूमिका का आभास करायेगा, जो इतिहास की गति को समझने और बढ़ाने के लिए लिखता है। उसका दावा है कि वह समाज के विकास के लिए लिखता है आदि आदि। अब तक के साहित्य इतिहास से हमें जो सीख मिली है उसी को आधार मान कर हम अपनी बात आगे बढ़ायेंगे।

साधारणत: जो बात अब तक समझने में आयी है, वह यह कि आज-कल जो कुछ भी सामान्य रूप से जनसमुदाय के हित में होता रहा है, वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सर्वहारा की हामी विचारधारा को मद्देनज़र रखकर होता हैं और वह जो पूंजीवादी या टूटती हुई सामंती व्यवस्था के नेतृत्व में होता है कतई जन समुदाय के हित में नहीं हो सकता। स्वाभाविक भी है, समाज व्यवस्था पर जिस वर्ग की हुकूमत है. वह निश्चित ही अपने वर्ग के हितों को ध्यान में रखता है और इसी कारण से वही वर्ग समस्त साहित्यिक उत्पादन के बहुत बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व भी करता है, नेतृत्व भी करता है। अपनी समाज व्यवस्था का अध्ययन करते हुए लूसुन ने कहा—"क्रांति की प्रारंभिक अवस्था में जो भी साहित्य के नाम पर लिखा जा रहा है, उसका नब्बे प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा सत्ताधारियों के पक्ष में लिखा जाता है।" बाकी जो बचा वह जन समुदाय के लिए।

जिसे हम साहित्य की संज्ञा देते हैं, वह जन जन की समझ और विचारधारा से अलग कोई चीज नहीं होता। ऐसे साहित्य का उत्पादन जनता के बीच, जनता से लगातार सीखते हुए होता है। इसी प्रकार से हमें यह जानना चाहिए कि ऐसे साहित्यिक उत्पादन के लिए जैसे लूसुन ने कहा—

"जनता का सम्पूर्ण जीवन कच्चे माल की खान है। ऐसा कच्चा माल जो अपने स्वाभाविक रूप में उपलब्ध है। जो अनगढ़ होने के बावजूद भी अत्यंत सप्राण, समृद्ध और मौलिक होता है। इसके साथ तुलना करने पर देखा जा रहा समस्त कला साहित्य फीका पड़ जाता है। यह ही जन साहित्य और जनकला का अनन्त स्रोत है। क्योंकि यही कच्चा माल उसका एकमात्र स्त्रोत है। उसका कोई अन्य स्त्रोत है ही नहीं।" जन जीवन से जुड़ी हर चीज का बदलाव जन जन की सोच के आधार पर ही होता है और साहित्यिक उत्पादन का बदलाव भी। इससे यह नतीजा निकलता है कि साहित्य जन कल्याण की लड़ाई का अभिन्न अंग है और अगर ऐसा नहीं है तो उसे साहित्य कहना जन जन के साथ अन्याय करना है। यही समझ निश्चित रूप से एक प्रगतिशील साहित्यकार के जेहन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मौजूद रहती है। इसी बात को आधार बना कर वह लिखता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो वह रचनाकार जो मार्क्सवाद लेनिनवाद की समझ से लैस होता है अपनी लेखनी का पूरा पूरा उपयोग जनकल्याण के लिए करता है। और अगर हम एक ऐसे संगठन की कल्पना करें जिस पर सर्वहारा का नेतृत्व हो तो हम जार्ज थामसन के शब्दों में कहेंगे "एक सही पार्टी की अगुवाई में बुद्धिजीवियों को नेतृत्व प्रदान करते हुए सर्वहारा को उन्हें विश्वास दिलाना होगा कि केवल स्वयं को पुर्ननिमित करते हुए ही नये समाज के निर्माण में वे पूरा पूरा योगदान दे सकते हैं।"

इस प्रक्रिया को बिना किसी सन्देह और सफलता से पूरा करने के लिए साहित्यकारों की मुक्त सहमति और उनका सम्पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है। क्योंकि विचारधारा के अन्तर्गत जैसा कि जार्ज थामसन ने फिर कहा "नेतृत्व के साथ स्वतन्त्र और केन्द्रीय निर्देशन के अन्तर्गत जनतन्त्र की हमारी दलील का यह अर्थ कतई नहीं है कि वैचारिक मसलों या जनता में सही व गलत के बीच फर्क करने वाले प्रश्नों के लिए बाध्यकर रवैया अपनाया जाय।" इसी बात को गोर्की ने हमें और सरलता से समझाया है, "साहित्य और कला की सर्वोत्तम सृजनात्मक कृतियाँ सामूहिक जीवन का सृजन है। प्रभावशाली लेखक व कलाकार उन्हें महज पूर्णत्तर-परिष्कृत रूप देते आये हैं।"

हमारे यहां साहित्य के क्षेत्र में जो बात सबसे पहले देखनी चाहिए वह है, सक्रमंणकालीन दौर से गुजरते हुए समाज की गति किस ओर है। एक ऐसे समाज का परिप्रेक्ष्य जिस विचारधारा के अधीन होने जा रहा है और इसी परिप्रेक्ष्य को प्रत्यक्ष रूप से स्थापित करने का संघर्ष दिनों दिन मजबूत

से मजबूततर होता चला जा रहा है। ऐसी हालत में साहित्यकार को अपनी स्थिति समझकर आगे आना ही उसका अहम काम है। क्यों कि साहित्यकार की अपनी वर्ग चेतना और जिस वर्ग के लिए वह कलम चला रहा है—इन दोनों के बीच एक अंतर विरोध है, इसी अंतर विरोध को उसे अपनी कलम से पाटना है। इसी प्रक्रिया से गुजरते हुए वह व्यक्ति सामाजिक विकास और आनवीय सृजनात्मक नियमों पर भी अधिकार कर पायेगा।

यह अंतर-विरोध साहित्यकार और जन साधारण के बीच का अंतर-विरोध है। क्रांति की सतत, कभी समाप्त न होने वाली विकास की प्रक्रिया के दौरान ही वह समाप्त होगा। परंतु साहित्यकार अपनी तरफ से कोशिश करता रहता है कि वह अपने सृजन को व्यवहार में लागू करे, अपनी जीवनदृष्टि को जनसमुदाय की जीवनदृष्टि से सम्बद्ध करें, सीखने की सतत प्रक्रिया से गुजरता हुआ वह जीवन व्यवहार में इनसान की प्रकृति के पैदाईशी कारणों पर टीका करे। एक इनसान की प्रकृति पर टीका करते हुए गोर्की कहते हैं, "मनुष्य का एक तरीका है, वह अपने मानवीय गुणों को उस हर चीज़ में तलाशता है और अभिव्यक्त करना है, जिसे वह देखता है। वह उन वस्तुओं की कल्पना करता है और उन्हें प्रकृतिक संघटना के साथ, श्रम और विवेक द्वारा रची गई हर वस्तु के साथ संयोजित करके देखता है।" मनुष्य की इस सहज प्रकृति को मद्देनज़र रखते हुए कहा जा सकता कि साहित्य की सम्पूर्ण समझ उसके लेखन के नजरिये और निर्धारित दिशा से तय होती है। उसका यह नजरिया और दिशा मजदूरों और किसानों की जीवन पद्धति से सीखने की ओर है, तो वह अपने उत्पादन को निश्चित रूप से उनकी मुक्ति का संघर्ष हो जाता है। कार्ल मार्क्स ने 'पूंजीवादी समाज में अपनी श्रम शक्ति को बेचकर जीने वाले श्रमिक और कलाकार दोनों को सर्वहारा कहा है।" क्योंकि दोनों के पास जीवन निर्वाह के लिए श्रम-शक्ति बेचने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। इतिहास में साबित हो चुका है कि दोनों की असल मुक्ति का मार्ग एक ही है, तो साहित्यकार के पास एक ही काम बच जाता है कि वह जनसमुदाय को अपनी वर्ग चेतना का बोध कराये। इसका अर्थ यह कि सही नेतृत्व में संघर्ष और उद्देश्य में एकता कायम करना।

ऐसी स्थिति में हमारे साहित्यकारों को इस बात का भ्रम हो जाय कि वे तो महान कार्य कर रहे हैं तो यह उनकी बहुत बड़ी भूल होगी। क्यों कि उनका यह काम उन्हें खुद ही स्वीकार करवाना है उन लोगों द्वारा जिनको आधार मान कर उन्होंने किया है। अगर साहित्यकार अलग से अपनी

सत्ता पर विचार करने लगता है तो निश्चित यह जनविरोधी और बेबुनियादी सोच होगी। इस सोच का शिकार होकर साहित्यकार धीरे धीरे असलियत से विमुख होता चला जायेगा। इसीलिए मुक्तिबोध ने ऐसे साहित्यकारों को आगाह किया है—

"अरे: जनसंग उष्मा के बिना,
व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते
प्रयासी प्रेरणा के स्त्रोत,
सक्रिय वेदना की ज्योत
सब साध्य उनसे लो
तुम्हारी मुक्ति उनके प्रेम से होगी
अपनी मुक्ति के रास्ते
अकेले नहीं मिलते।"

अब हम साहित्यकार की प्रारंभिक जिम्मेदारी के बारे में चर्चा करेंगे। 1930 के आसपास लू-सुन ने बुद्धिजीवियों की जिम्मेदारी पर अपने विचार इस प्रकार रखे, "रचनाकारों के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें सर्वहारा के बारे में जानकारी हासिल करने से पहले, मजदूरों किसानों को शिक्षित करने का काम अपने हाथ में लेने से पहले उनसे खूब सीखना चाहिए। यह बात उनका स्तर ऊंचा करने के बारे में और भी अधिक लागू होती है। हमें किसी और का नहीं सिफ मजदूरों किसानों का जीवन स्तर, मानसिक स्तर व उनकी समझ का स्तर ऊपर उठाना है। इसका मतलब यह नहीं कि उनका स्तर ऊंचा उठाकर सांमती वर्ग पूंजीपति वर्ग तथा निम्नपूंजीवादी बुद्धिजीवियों के उन्नत स्तर तक पहुँचा दें। इसका अर्थ होता है—कला साहित्य को उसी स्तर से ऊपर उठाना जिस स्तर से हमारा मजदूर किसान ऊपर उठ रहा है। यह एक ऐसी दिशा है जिससे हमारी जनता आगे बढ़ती है। उनकी इस रफ्तार को ध्यान में रखते हुए यहां हमें फिर एक बार मजदूरों, किसानों से सीखना चाहिए। क्योंकि मजदूरों और किसानों में काम करेंगे तो ही उत्कृष्ट जन-साहित्य रच पायेंगे। इसी प्रक्रिया से स्तर ऊंचा करने का काम सही ढंग से कर सकते हैं और यहीं हम दोनों के बीच (साहित्यकार और जनता) सम्बंधों का पता लगा सकते हैं।"

कला और साहित्य की सार्थकता और सार्वजनिकता इसी में है कि वह विशाल जन समुदाय के लिए हो। वे साहित्यकार, जो सर्वहारा की विचार-धारा से जुड़े हुए हैं और उसी में अपनी मुक्ति खोज रहे हैं, उन्हें

यह जान लेना चाहिए कि सर्वहारा की अपनी एक पार्टी है और उसी के नेतृत्व में मुक्ति संग्राम सफल हो सकता है। वह पार्टी कला साहित्य के काम को भी अपने नेतृत्व में आंकती है। सर्वहारा की विचारा धारा से सम्बधित सात्यिकार किसी ने किसी रूप में पार्टी संगठन से जुड़े होते हैं और इन सम्बधित साहित्यकारों को पार्टी द्वारा कला साहित्य के क्षेत्र में किये जाने वाले काम को पार्टी के समूचे काम के बीच के सम्बंधों को समझते हुए आंकना चाहिए। उन्हें, पार्टी द्वारा किये जाने वाले कला साहित्य के क्षेत्र में काम और गैर पार्टी द्वारा कला साहित्य के क्षेत्र में किये जाने वाले काम के बीच फर्क करना चाहिए। क्योंकि इसी प्रवृति और समझ के रहते हुए हम अपने और प्रतिक्रियावादियों के बीच सही लाईन खींच पायेंगे।

वर्तमान व्यवस्था में बुर्जुवा ओर सर्वहारा के बीच संघर्ष और सर्वहारा की विजय यात्रा, मानव विकास का अनिवार्य अंग है। साहित्यकार, जो सर्वहारा की विजय यात्रा में मानव समाज का भविष्य देखते हैं वे ही सर्वहारा के उद्देश्य और संघर्ष को अपनी कृतियों में दिखा पाते हैं। वे ही अपनी कृतियों को संघर्ष यात्रा का अनिवार्य अंग बना पाते हैं। मार्क्सवाद का किताबी अध्ययन कर सर्वहारा की विचारधारा के साथ जुड़ने की बात कहना, उद्देश्य के साथ तादाम्य स्थापित करने की हामी भरना तो बहुत सरल बात है। जीवन व्यवहार में उतारकर उससे जुड़ना और साहित्य रचना, उत्कृष्ट कृतियों का उत्पादन करना बहुत कठिन काम है।

समाज के ठेकेदारों ने जानबूझ कर सर्वहारा के सांस्कृतिक उत्थान को दबाया है। उसके साहित्य और कला का दमन किया है। हमारे देश में जहाँ पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया के साथ मरते हुए सामंतवाद को जानबूझ कर जिन्दा रखा जा रहा है वहाँ रचनाकार का बाहरी और आन्तरिक संघर्ष और भी पेचीदा और भी तेज हो जाता है। यह संघर्ष इतना उलझा हुआ होता है कि लगातार संघर्ष करते रहने के बावजूद असहाय मध्यमवर्गीय साहित्यकार क्या रुख अपनाता है, कुछ साफ़ साफ़ नहीं कहा जा सकता। परन्तु मध्यमवर्गीय साहित्यकारों को इसी पेचीदगी से गुजरते हुए, अपनी मिथ्या चेतना को समाप्त करते हुए, सर्वहारा की विचारधारा को समझते हुए उसकी वर्ग चेतना को अपनाते हुए, असमाप्य यात्रा के दौर से गुजरना पड़ेगा।

इतिहास साक्षी है, जो साहित्यकार इस संघर्ष यात्रा में अपनी कृतियों को हथियार के रूप में इस्तेमाल कर पाये हैं वे ही इतिहास में सर्वहारा के साहित्यकार माने गये हैं और वे ही इतिहास में लोकप्रिय हुए हैं और

वे ही इस बात को आत्मसात कर पाये हैं कि लोकप्रिय सर्वहारा साहित्य सर्वहारा वर्ग के वर्ग चेतन रचनाकारों की रचनाशीलता से ही सम्भव होता है। इसके अलावा जिन साहित्यकारों ने लोकप्रिय साहित्य लिखा है—वे बुनियादी बदलाव की अनिवार्य शर्त को पहचान पाये थे और सर्वहारा के उद्देश्यों से गहरी सहानुभूति रखते थे। भले ही वे कभी दूसरे वर्गों के साहित्यकार रहे हों। आज की हमारे देश की परिस्थितियों में इस प्रकार के साहित्यकारों की बहुत बड़ी संख्या है।

कॉडवेल ने सर्वहारा वर्ग के साहित्यकारों के साथ बुर्जुआ वर्ग के साहित्कारों के सम्बन्ध तीन प्रकार से बताए हैं। एक—विरोधी, दूसरे—सहयोगी और तीसरा आत्मसातीकरण। सर्वहारा का विरोध करने वाले प्रतिक्रियावादी होते हैं। क्योंकि वे इतिहास की विकास प्रक्रिया में नये के बदले पुराने का समर्थन करते हैं। सर्वहारा वर्ग के सहयोगी वे साहित्यकार होते हैं जो बौद्धिक रूप से अपनी सहानुभूति सर्वहारा के संघर्ष में रखते हैं। ऐसे साहित्यकार सर्वहारा वर्ग को अत्यन्त पीड़ित रूप में देखते हैं। उनके मन में सर्वहारा के प्रति दया का भाव होता है और वे अपने आपको अच्छी हालत में पाकर सर्वहारा वर्ग की मदद करने का इरादा रखते हैं। यही कारण है कि उन्हें अपना स्वयं का होता हुआ शोषण नज़र नहीं आता। यही कारण है कि उनकी जीवन दृष्टि इतनी साफ़ नहीं हो पाती कि वे सर्वहारा की संघर्ष यात्रा में अपने सपनों का साकार रूप देख सकें! तीसरे वे साहित्यकार, जो अपने वर्गीय विचारों और उद्देश्यों से मुक्त होकर समाज और अपने जीवन के प्रति नेतृत्व को स्वीकारते हैं। सर्वहारा की विचारधारा को, उसके दृष्टिकोणों को आत्मसात करते हैं, वे ही सर्वहारा के विश्वसनीय साहित्यकार होते हैं तथा वे ही लोकप्रिय साहित्य रचते हैं।

सर्वहारा के लोकप्रिय साहित्य का सृजन करने वाले साहित्यकारों को दिशा देते हुए ब्रेख्त ने लिखा "लोकप्रिय साहित्य व कला वह है जो व्यापक जनता के लिए बोधगम्य हो। जिसमें जनता के अभिव्यंजना रूपों को अपनाया गया हो। उन्हें समृद्ध बनाया गया हो। जिसमें जनता के दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया हो। उसे समर्थन दिया गया हो। उसे सही दिशा में सुधार का प्रयत्न किया गया हो। जिसमें जनता के सर्वाधिक वर्ग का ऐसा चित्रण हो, जिसमें उसके नेतृत्व की क्षमता प्रकट हो और इसी प्रकार वह रचना दूसरों के लिए भी सरलता से बोधगम्य हो। परम्परा से सम्बद्धता हो और विकास का प्रयत्न हो। नेतृत्व करने वाले वर्ग की उपलब्धियों की नेतृत्व

के लिए संघर्ष करने वाले वर्ग को पूरी जानकारी दी गयी हो।"

हिन्दी साहित्य जगत में सर्वहारा की विचारधारा को आत्मसात करते हुए सृजनात्मक उत्पादन करने वाले साहित्यकार, अपनी रचनाओं में मजदूर किसानों से सम्बन्धित प्रमुख सामग्री का उपयोगी करने वाले साहित्यकार, बहुत ही कम संख्या में हैं। इसका क्या कारण है? हमारे साथी, पिछले पचास वर्षों में यह संख्या जितनी बढ़नी चाहिए उतनी न बढ़ने के कारण साहित्य के सौन्दर्य में खोजते रहे हैं। मेरा मानना है कि यह गलत तरीका है। हमें इसके सही कारणों की खोज करनी चाहिए। हमें साहित्य के सौन्दर्य को छोड़कर, कारणों को समाज के विकास और जनवादी राजनीति में खोजने चाहिए। तब शायद हम सही नतीजों पर पहुँच सकें। हिन्दी साहित्य जगत में मध्यमवर्गीय प्रकृति का बोलवाला है। उन्होंने अपने ही वर्ग के लिए रचनाएं लिखी हैं। इसलिए इस साहित्य से कोई खास उम्मीद नहीं की जा सकती।

आज़ादी से पहले, प्रगतिशील धारा में बहकर साहित्यकारों ने बहुत अच्छा उत्पादन दिया। यह दर आज़ादी के बाद बढ़ी नहीं घटती ही चली गयी। इसका मुख्य कारण हमारे समाजवादी संगठनों के चिन्तन और कार्यपद्धति में खोजा जाना चाहिए। दूसरा कारण यह है कि आज़ादी से पहले लेखक, व साहित्यकार के सामने दुश्मन साफ़ साफ़ नज़र आ रहा था। अर्थात कहाँ वार करना है, साहित्यकार की कलम ठीक से जानती थी। परन्तु आज़ादी के बाद मध्यमवर्गीय मार्क्सवादी और इस विचारधारा से प्रभावित सभी के सामने दुश्मन को ठीक से पहचानने में दिक्कतें आती रहीं। साहित्यकारों को सही दिशा देने का काम हमारी पार्टियों को करना चाहिए था—नहीं किया गया। पार्टियाँ अस्तित्व की लड़ाई-लड़ती रहीं। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी यही हुआ और नतीजा आपसी तनाव, दिशाहीनता और एक दूसरे पर कटाक्ष। यही कारण है कि आज भी नयी पीढ़ी बुरी तरह से भ्रमित है? इसे अपने सवालों का कोई समाधान नहीं मिल रहा है।

इसके अलावा, जो कुछ, आज कम मात्रा में लेकिन अच्छा लिखा जा रहा है। उसे मजदूरों, किसानों तक कौन पहुंचाये। यह काम पार्टी का है जो उसने नहीं किया। मजदूरों किसानों की समझ के विकास का प्रश्न आज किसके जिम्मे है। क्या यह सवाल आज प्रत्येक सजग व्यक्ति के जेहन में नहीं है। जरूर हैं, पर वह अपने तंई इस सवाल को अभी, ठीक से नहीं समझ पाया हैं। उसकी कोशिश जारी है, अच्छे परिणामों की उम्मीद में वह

लगातार जुटा हुआ है।

आज साठ वर्षों बाद भी किसान व मजदूर वर्ग की कला चेतना तथा लिखे जा जा रहे जनवादी साहित्य के बीच बहुत बड़ी खाई है। कौन जिम्मेदार है इसका ? अगर हम इसका दोष जनवादी साहित्यकारों पर मंढ़ने लगेंगे तो शायद हमारी भूल होगी। अवश्य ही इसे हमारे वामपंथी आंदोलन के इतिहास में तथा वामपंथी पार्टियों की रणनीति व कार्यनीति में खोजना चाहिए। यह खोज महज राष्ट्रीय पैमाने पर ही नहीं अंतर-राष्ट्रीय पैमाने पर भी होनी चाहिए। जनवादी साहित्य (जिसे कहा जाता है—है या नहीं यह खोजना अभी बाकी है) और जनसमूह के बीच जो खाई है, उसे पाटने का काम आज भी हमारी, पार्टियों, संगठनों के पास बाकी रह जाता है। क्या इस खाई को पाटने से पहले, सर्वहारा के अधिनायकत्व को स्वीकार कर उत्कृष्ट साहित्य रचना संभव होगा ?

हमारे यहां एक भूल जो बरसों से की जा रही—बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों तथा कलाकारों को वर्गों से परे समझना। और यह भूल जानबूझ कर बुर्जुआ करता है क्यों कि यह उसके हक में है, परंतु हमारे मार्क्सवादी साथी करें तो कैसा लगता है ? जरा सोचो तो ! ऐसा हुआ, लेकिन इसे लगातार स्वीकार करना, गलत प्रवृति को बढ़ावा देना है। नहीं। हमें इस प्रतिक्रियावादी समझ का व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप में, संगठन तथा पार्टी के बीच भी जबरदस्त विरोध करना चाहिए।

ग्राम्सी ने बुद्धिजीवियों को वर्गों से परे सामाजिक इकाई समझने की धारणा को गलत बताते हुए कहा, "बुद्धिजीवियों की बौद्धिकता का चरित्र उसके सामाजिक कार्य से निर्धारित होता है। इस दृष्टि से दो प्रकार के बुद्धिजीवी होते हैं। एक—परंपरागत पेशेवर बुद्धिजीवी तथा दूसरे—अवयविक बुद्धिजीवी। परंपरागत पेशेवर बुद्धिजीवियों की समाज में एक अंतर्वर्गीय सत्ता होती है। वे अपनी वर्गीय स्थिति को छिपाने की लगातार कोशिश करते रहते हैं। अंततः उनकी यह अंतर्वर्गीय सत्ता और बौद्धिककर्म का चरित्र उनके अतीत और वर्तमान के वर्गगत समझौते से ही निर्धारित होता है। इसीलिए वे लम्बे समय तक अपनी वर्गीय स्थिति को छिपा नहीं सकते। उन्हें जल्दी ही नंगा कर दिया जाता है। दूसरे—अवयविक बुद्धिजीवी अपने वर्ग के विचारों और आकांक्षाओं के निर्णायक और दिशा निदेशक होते हैं। अतः साहित्य और साहित्यकारों के बीच सम्बंध जोड़ने तथा सर्वहारा की विचार धारा के आधार पर उनका विश्लेषण करते समय हमें बहुत

सारी ऐसी गलतियों और भ्रमों से सावधान रहना चाहिए।"

विश्व साहित्य का इतिहास इस बात की गवाही देता है कि क्रांति के दौर में जिन साहित्यकारों ने श्रम को कला साहित्य के सिंहासन पर बैठाया है, वे, ही जनता के साहित्यकार माने गये हैं। किसी आलोचक ने गोर्की पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, "सौ हार्स पॉवर वाला साहित्य गोर्की ने काफ़ी लिखा। 'प्लेटन' जैसे क्रियाशील कारखाना मजदूर से बहुत कुछ सीख कर, उससे प्रेरणा प्राप्त करके गोर्की ने श्रम को साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान दिया है।" श्रम ही हमारे साहित्य का हीरो होना चाहिए। साहित्य की यह समझ उन मजदूरों से, उन किसानों से कलम चलाने वालों तक पहुंचती है जो हर पल नये संसार के निर्माण में लगे हैं।

अब हम अपने परिवेश में लिखे जा रहे साहित्य और साहित्यकारों पर जरा निगाह डालें। साथ में यह भी देखने की कोशिश करेंगे कि वह कौन सा रास्ता है, जो हमारे उद्देश्य की पूर्ति का हो सकता है ?

हमारे यहाँ के लेखकों, साहित्यकारों की सच्चाई और जिम्मेदारी पर फिर से कुछ विशेष कहना चाहेंगे। एक सजग साहित्यकार अपने बारे में काफी जानकारी रखता है। मुक्तिबोध के शब्दों में "एक सच्चा लेखक जानता है, वह कमजोर है, कि उसने कहां सच्चाई से जी चुराया है; कि कहाँ उसने अपने आपको उलझा दिया है; कि यहाँ उसने लीपापोती की है; कि कहां उसे वस्तुत: क्या कहना था और क्या कह गया; कि उसकी अभिव्यक्ति कहाँ ठीक है। ये बातें हर सच्चा लेखक जानता है। सच्चा लेखक अपनी अतीत की गलत मानसिकता का घोर दुश्मन होता है। वह अपनी आतमशान्ति को भंग करके ही एक कारगार लेखक बना रह सकता है। एक लेखक अपनी कसौटी पर दूसरों की प्रशंसा को भी कसता है और आलोचना को भी अर्थात वह स्वयं अपना ही सबसे बड़ा आलोचक होता है।"

इस प्रकार की सोच वाला साहित्य अपनी सम्पूर्ण समझ के साथ सर्वहारा की सतत क्रांति में हिस्सेदार होता है। वह अपने लेखन में सर्वहारा की राजनीति को सीधे सीधे जनता की संस्कृति और कला के माध्यम से व्यक्त करता है। उसके लेखन का रूख जनता की वर्ग चेतना और कला साहित्य से सम्बधित उसकी समझ को विकसित करना होता है। जिससे सर्वहारा अपने नेतृत्व में क्रांतिकारी प्रक्रिया के दौरान साहित्य के मोर्चे पर अपनी जीत हासिल कर सकें।

उपरोक्त विश्लेषण को मद्देनजर रखते हुए यह कहना कि भारत में

कोई एक क्रान्तिकारी (मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारों से लैस) पार्टी है, जिसके पास हमारी मेहनतकश जनता की मुक्ति का रास्ता है और उसी के नेतृत्व को साहित्यकारों को स्वीकारना चाहिए, गलत होगा। हम यह कह सकते हैं कि भारत में जनवादी आन्दोलनों का इतिहास आज इस बात की जरूरत महसूस करता है कि एक ऐसी पार्टी हो जो जन जन की मुक्ति के साथ उन भटकते लेखकों, कलाकारों, साहित्यकारों को भी दिशा दें ताकि वे अपनी मुक्ति हासिल कर सके। ऐसी स्थिति में हमारे सजग जनवादी, प्रगतिशील, मार्क्सवाद से प्रभावित साहित्यकारों की क्या जिम्मेदारी हो सकती है?

तमाम परिस्थितियों को जेहन में रखते हुए हम अपने सामने एक कार्यक्रम रख सकते हैं। जो निश्चित ही इन हालतों से हमें उभारेगा। जनता में अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की समझ पैदा करनी, उसे एक कारगर दिशा देना अगर हमारा काम है, तो एक ही रास्ता है और वह है—साहित्यकारों, लेखकों, कलाकारों और जनता की मुक्ति में हिस्सेदार होने की उम्मीद लिए बैठे लोगों का एक संयुक्त मोर्चा। संयुक्त मोर्चे की बात करना मौजूदा हालत में कला साहित्य के मोर्चे पर सही दिशा की ओर कदम बढ़ाना है। परन्तु इस संयुक्त मोर्चे की बात पर जोर देते हुए हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि संयुक्त मोर्चे के दौरान केवल एकता कायम करना और बिल्कुल संघर्ष नहीं करना—दोनों नीतियाँ गलत है। यह बात जितनी राजनीतिक संघर्ष में लागू होगी है उतनी ही साहित्य और कला के मोर्चे पर भी लागू होती है।

निम्न पूंजीवादी लेखक, कलाकार, कला साहित्य की दुनिया में संयुक्त मोर्चे की शक्तियों में से एक महत्वपूर्ण शक्ति है। उनके विचारों और रचनाओं में बहुत सी कमियाँ हैं परन्तु तुलनात्मक ढंग से विचार किया जाय तो हमें लगेगा कि उनका असली झुकाव क्रान्ति की ही तरफ होता है। इसलिए उनको अपनी गलतियाँ दूर करने में हमें मदद करनी चाहिए तथा उन्हें मेहनतकश जनता की सेवा करने वाले साहित्यिक मोर्चे के पक्ष में कर लेना चाहिए। यही आज हमारे लिए महत्वपूर्ण काम है। यह एक ही रास्ता है मौजूदा हालत में, जहाँ हम अपनी सृजनात्मक शक्ति का सही और कारगर उपयोग कर सकते हैं।

कहानी

नसैनी

■ शीतेन्द्रनाथ चौधुरी

दीवार से टिकी नसेनी पर खड़ा वह धुँआधार कूची चलाये जा रहा था। अभी-अभी जो हादसा गुज़र गया उसका लेशमात्र भी चिह्न उसके चेहरे पर नहीं ढूँढ़ा जा सकता था।

वह धड़ाम से गिरा था।

चिकने फर्श पर नसेनी फिसल गई थी। दायें हाथ के पास नसेनी से ठोंके खीले पर लटका चूने का डब्बा छिटक पड़ा था। बीच के खुले दरवाजे से दूसरे कमरे में बिखेर पड़े सामानों पर यहाँ-वहाँ चूना छितर गया था। फर्श पर सफेदी के परनाले बह रहे थे। घर की मेमसाहब बरस पड़ी थी —"ये क्या तमाशा है, एक ज़रा से दुधमुँहे बच्चे को पुताई के लिए भेज दिया! न कोई धरने-पकड़ने को, न मदद करने को। कल से घर का सारा सामान बिखरा पड़ा है।"

शोरगुल सुनकर हाथ में अखबार लिये बाबूसाहब भी अन्दर आ गये। उन्होंने केवल इसी वजह से आज दफ्तर से छुट्टी ले रखी है। अभी तक वे बाहर धूप में बैठे अखबार पढ़ रहे थे।

पति को सामने देखकर उनकी चिढ़ और बढ़ गई—"आपका सारा काम ही ऐसा होता है। क्या कहा था आपने उस ओवरसीयर से कि एक पिद्दी-सा लड़का भेज दो? दुनिया-जहान के आदमी काम कर रहे हैं यहाँ और उस मुए को यही एक बित्तेभर का छोकरा भेजना था हमारे यहाँ!"

इससे पहिले कि बाबूसाहब पत्नी का मिजाज ठंडाने की गरज़ से कुछ कहते, उनकी निगाह फर्श पर फैली घर की बदहाली पर पड़ी और वे आपा खो बैठे—"निकलो वे यहाँ से, फौरन! नहीं करानी हमें पुताई। पता नहीं कहाँ से आ जाते हैं बैठेठाले परेशान करने को। हुँः, बड़ा आया है पुताई करने, अच्छे-भले फर्श की हुलिया बिगाड़कर रख दी। अब धोओ घंटे भर रगड़-रगड़कर।"—उत्तेजना में वे हाँफ रहे थे।

लड़का एकदम सकते में आ गया।

बाबूसाहब की इस बिगड़ैल सूरत से वह खौफ़ खा गया था। उसे यह भी ख्याल न रहा कि वह इतनी ऊँचाई से गिरा है। उसने टाँगें सीधी कीं, झुककर दाँये घुटने पर रिसते खून को बाँये हाथ से दबाया और जल्दी-जल्दी कूची बोरकर फर्श का चूना उठाने लगा।

कुछ देर बाद अपना सामान समेटकर वह अपराधी की तरह सिर झुकाये बाहर जाने लगा तो बाबूसाहब ने टोका—"इस तरह घर का सारा सामान निकलवाकर अब कहाँ भाग रहा है बे! —तुम्हारा साहब एक आदमी और नहीं भेज सकता?"

लड़के ने उसी तरह सिर झुकाये हुये जवाब दिया—"कहाँ देता है साहब! कुल आदमी तो बड़े बंगले में लगे हैं।"

तब तक ओवरसियर साहब का मुँशी मुआयने पर आ गया था। नजर फर्श पर छिटकी सफेदी पर पड़ते ही वह आग बबूला हो गया—"अबे, चूना तेरे बाप का है क्या? इस तरह जहाँ-तहाँ गिराता फिर रहा है!—सारी कीमत तेरी तनखाह से काट लूँगा हरामखोर।" —फिर फर्श पर गिरी हुई नसेनी को देखकर चिल्लाया—"अरे अकिल के दुश्मन! इतने चिकने फर्श पर इस तरह सीधे-सीधे नसेनी लगायी जाती है कहीं! नीचे बोरा या फट्टी बिछाकर नसेनी खड़ी की जाती है। स्साले, तुम लोगों को बुढ़ाने पर भी अकल नहीं आयेगी। गनीमत है कि टाँग नहीं टूटी, नहीं तो अभी हंगामा मच जाता। पैसा दो, अस्पताल ले जाओ। ओवरसियर साब मेरी नौकरी खा जाते।"

बाबूसाहब ने नोट किया कि ओवरसियर के मुँशी ने यह नहीं बताया कि बोरा या फट्टी आती कहाँ से। उन्होंने अपना लहजा भरसक नर्म बनाते हुए उससे कहा—"भई, एक आदमी और होना चाहिए कम-से-कम। अकेले यह काम नहीं होता, किसी को पकड़ता तो पड़ता ही है।"

मुँशी ने बाबूसाहब की बात सुनकर फौरन डाँट लगाई—"अबे! हुंआ से एक जना आदमी और बुलाला। —आज शाम तलक यह कोआटर पूरा हो जाना चाहिए। जा, भाग जल्दी।" और लड़के के पीछे वो मुँशी भी निकल गया।

तीसरे पहर लड़का अकेले ही लौटा।

बाबूसाहब बाहर अहाते में बैठे बेताबी से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पत्नी कईबार टोक चुकी थी—"सारा सामान बाहर बिखरा पड़ा है और वो

लड़का अभी तक नहीं लौटा !"

बाबूसाहब ने लाचारगी से पत्नी की ओर देखा ।

तभी वह लड़का फाटक खोलकर कम्पाउंड में घुसा, दरका-दरका चलकर आँगन का फासला तय किया और कमरे में नसेनी उठाकर वैसे ही दीवार से टिकाने लगा ।

बाबूसाहब उसके पीछे-पीछे अन्दर आये और उसे पहले की तरह नसेनी पर चढ़ने की तैयारी करते देख बोले—"फिर तुम अकेले ही आये ?"

"ओरसियर आदमी कहाँ देता है साहब ! ऊ मुंशी तो खाली बड़ा-बड़ा भाषण झाड़ता है ।" लड़के ने सिर उठाया ।

गरज बाबूसाहब की थी । वे अन्दर से एक बोरा उठा लाये । लड़के ने नसेनी ऊपर उठायी, बोरे को फर्श पर बिछाया और उस पर नसेनी के पाँव रख दिये । बाबूसाहब मुस्तैदी से नसेनी पकड़े हुए खड़े रहे । लड़का इतमीनान से आठवें पायदान पर खड़े होकर पुताई करने लगा—सर्र-सर्र...... ।

हाथ के दायरे में जितनी दीवार आती थी उस हद तक पोत चुकने के बाद वह झटके के साथ थमा, एक गहरी साँस ली और कूची को चूने के के डब्बे पर टिकाकर बायें कान में खोंसी हुई अधजली बीड़ी निकाली; तब यकायक पीछे पलटा—"साहब, जरा सलाई चाहिये ।"

बाबूसाहब ने मुन्ने को आवाज दी—"बेटा, जरा माचिस तो लाना ।" लड़के ने चुटकी में दबी जलती हुई तीली को हथेलियों के घेरे में लेकर बीड़ी सुलगाई और चिड़िया की चोंच की तरह मुंह लम्बाते हुए एक माहिर बीड़ी बाज की तरह कश खींच कर सलाई वापस की । उसने फुक-फुक कर लगातार तीन-चार कश खींचा और मौज में आँख मूँद ली । जाहिर है कि फेफड़े के खाली खाँचों में भरे हुए धुंए के तीखेपन से उसे बड़ा सुकून मिला था । उसने उमगकर अपने कलछौंह ओठों के कपाट उघाड़ पीले दाँत निकाल दिये—"आज चाहे रात नौ बज जाये मैं इस कवाटर को पूरा करके ही छोड़ूंगा ।"—उसने यह बात कुछ इस अन्दाज़ में कही गोया सलाई लेने की कृतज्ञता दर्शा रहा हो । —और फिर पीछे मुड़कर उसी जोश में सड़प-सड़प कूची चलाने लगा ।

बाबूसाहब नसेनी को दोनों हाथों से कसकर पकड़े हुए मशीन की रफ़्तार से चलते हुए उसके दाहिने हाथ को घूरे जा रहे थे कि तभी एक कतरा चूना छिटककर उनकी दांयी आँख की पलक पर पड़ा । वे सहम गये । —चूना आँख के लिये बड़ा खतरनाक है । उन्होंने मुन्ने को हाँक लगाई,

"बेटा जरा गमछा तो लाना।" और उन्होंने सिर और आँखों पर गमछा लपेट लिया। चूने के डरसे वे भरसक अपना सिर नीचे झुकाये रखते लेकिन कभी-कभी बीच में सिर उठाकर लड़के की ओर देख भी लेते। गमछे के झीनेपन से झाँककर उन्होंने देखा लड़का हथेलियों से आँखें रगड़ रहा है। उसके हाथ भी चूने से सने हुए थे। वे दहल गये—गयीं इसकी आँखें। "अरे-अरे! चूना आँखें खा जाता है नीचे उतरकर आँखें धोलो पहले। तुम्हारे हाथ भी तो चूने से सने हैं।" वे एक साँस में कह गये।

लड़का लापरवाही से हँसा—"कुछ नहीं होता, हमें कुछ नेई होता साहब।"

उसने 'हमें' पर जोर दिया था।

लड़के ने जिस आसानी से अपने और उनके बीच फर्क की लकीर खींची, उसके उस आर-पार भेदने वाली पैनी अनुभव-दृष्टि पर वे दंग रह गये। दरअसल वह सही था। उसे वाकई कुछ नहीं हुआ।

उन्होंने वैसे ही आँखें उठाकर एकबार फिर उसे देखा। उसने तीन-चार बार घसर-घसर करके बेरहमी से आँखें रगड़ीं और चेहरे पर बेपरवाह-सा भाव ओढ़े पहले की तरह ही तेजी से कूची चलाने लगा।

बाबूसाहब अन्दर तक हिल गये। उन्होंने गमछे के झीने आवरण से निगाहें गाड़कर उसकी आँखों को जाँचने की कोशिश की—इस लड़के की आँखें उन्हीं की तरह नरम माँस, झिल्ली और तरल पदार्थ की बनी है या किसी सफेद-काले स्टोन की गोल कटिंग से, जिसके तल पर चूना या तेजाब भी बेअसर है?

पैरों की आहट पाकर बाबूसाहब ने गर्दन घुमाई, इससे कुछ बड़ा-सा लड़का खुले दरवाजे से अन्दर दाखिल हुआ। उसके बदनपर जहाँ-तहाँ चूने का उजरापन चमक रहा था। उसने नसेनी के पास पड़ी टाँगी उठाई—"टंगिया लै जारिया हूँ बे, मोर कूची घस गई है।"

लड़के ने अपना हाथ रोका और झटके से गर्दन घुमाई—"पैंले बीड़ी निकाल बे एक ठो।"—और उसने बाबूसाहब की ओर देखकर पहले की तरह दाँत निकाल दिये—"सलाई, साहब!"

बाबूसाहब ने पास पड़ी माचिस उठाकर ऊपर बढ़ा दी। नीचे खड़े लड़के ने अपने कच्छे के नाड़ेदान में उँगली डालकर एक बीड़ी निकाली और उसे थमा दी। लड़के ने नसेनी के पाँवदान पर उसी तरह खड़े-खड़े बीड़ी को दो अँगुलियों के बीच चुटकी में थाम उलट-पुलटकर नेखा—एक साबुत बीड़ी

थी। उसने पहले बीड़ी का सिर ओठों के बीच किया और मुंह पोपलाकर हवा फूँकते हुए उसे बराबर किया और फिर पूँछवाला चपटा सिरा दाँतों के बीच दबाकर फक् से तिली सुलगाई और एक गहरा कश खींच धुएं की एक लम्बी नली छोड़ी। नीचे खड़ा लड़का लालची निगाहों से उसे घूर रहा था। उसने मुँह में उग आया थूक इस तरह गुटका जैसे कि धुएं के कसैलेपन का स्वाद ले रहा हो। लड़के ने तनिक झुककर सुलगी हुई बीड़ी उसकी ओर बढ़ा दी। उसने झट हाथ बढ़ाकर उसे थाम ली और वह पूरी ताकत से एक लम्बा कश खींचकर नाक-मुँह से धुआं उगलते हुए कहने लगा—"तेरा अच्छा है यार, छोटा-सा कवाटर है; अकेलेईच मार देगा हमको तो ऐसा बंगला मिला कि पचासन ठो कोठरी है उसमें......"

"हाँ बे, मैं तो आजई इसकी माँ की...ऐसी-तैसी करके छोड़ूंगा।" उसने बहादुरी से सिर उचकाया।

"लेकिन बड़ा सूखा-सूखा लगता होगा न हियाँ?"

"हाँ बे, इससे तो सड़क का कामई ठीक था, जब चाहे फुल्ली-झुमकी के लंगी मार दो......।"

"स्साली, हँसते-हँसते दोहरी हो जाती है और छाती पे फुग्गा उचकाय लगती है।......तब देखा न, ऊ मुँशी का बच्चा हमें डाँटने का बहाना बनाये कैसा उनके पीछे भागे फिरता है; सार हरामी के लार चूयै लागे......।"

"लेकिन तेरा तो ठीकई है बंगला में, एकदम फिलम वाली हिः...।" वह खिक् से हँसा।

बाबूसाहब अवाक खड़े सुन रहे थे। दोनों लड़कों ने मानो उनके वजूद को नकार दिया था। वे जिस तरह की बातचीत में मशगूल थे, वह उनकी मौजूदगी का अहसास होने पर कतई सम्भव नहीं था। बाबूसाहब सकपकाये, कहीं मुन्ना भी यहीं कहीं दुबका हुआ सुन न रहा हो। उन्होंने फौरन बनावटी खाँसी खाँसकर उनकी समाधि तोड़ने की कोशिश की।

बाबूसाहब के खाँसते ही उनकी चेतना लौट आयी। नसेनी पर खड़े लड़के ने बाबूसाहब की ओर देखा और झट् जीभ काटकर नीचे खड़े अपने साथी को आँख मारी। उसने भी मुड़कर देखा और दोनों के चेहरों पर से आसमान में उड़ते हुए बादलों के कारण धूप में भागती परछाईं की तरफ एक शर्म की छाया दौड़ गयी।

अब दोनों इस तरह गम्भीर थे जैसे हमेशा ही वे इसी तरह गम्भीर रहते हों।

—"जा बे टंगिया लेकर। मैं तो आज पूरा करके ही दमलूँगा चाहे रात ही क्यों न हो जाय......" एक पल रुककर फिर बोला—"आज पेसा लेना है। साला ओरसीयर बड़ा साहब बनता है, आज दस दिन होगिया पेसा नहीं दिया..... जानता तो है वे सौतेला बाप ठेहरा, आज खाना भी नहीं दिया; बोलता—'पैले पेसा ला, ई कोई मुफत का हाटल नहीं आय......' आज पेसा नहीं दिया तो ओरसीयर का गट्टा पकड़ लूँगा......" एक बारगी उसकी आँखें सुलग उठीं।

वह टांगी लेकर चला गया। लड़का दीवार की ओर मुड़ा और फिर से पुताई में जुट गया।

बाबू साहब ने गमछे के ताने-बानों के बीच बारीक छेदों में से नज़रें गाड़कर देखा—लड़का एक पट्टेदार अंडरवीयर पर पीले रंग की कालरदार बनियान पहने है। उसके चूतड़ पर कच्छा फटा हुआ है। अंदर अंदर से लगा काला पैबन्द बाहर झाँक रहा है। उन्होंने अपनी गर्दन दाँये-बांये, आगे-पीछे घुमाकर अलग-अलग कोणों से लड़के का मुआयना किया। उन्होंने पाया इस मालूली से लड़के के व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं। वह हर कोण से एक अलग शख्स दिखलाई पड़ता है। कहीं से वह एक मासूम बच्चा दीखता है, कहीं से उभरती उम्र का किशोर, कहीं से एक बिगड़ेल आवारा, कहीं से लड़ाई का तेवर अख्तियार किया हुआ विद्रोही तो कहीं से दुनिया की मार से पिटा एक तज़ुर्बेदार बुज़ुर्ग।

वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद चूने का डब्बा-कूँची थामे नीचे उतरता और नसेनी आगे खिसका कर उसके पाये बोरे पर रख फिर से ऊपर चढ़ता। बाबू साहब पकड़ते और उनकी तनिक-सी गैरमुस्तैदी में नसेनी फिसलने को होती तो वह मुड़कर उनकी ओर देख मुसकरा देता। वे एहतियाती तौर पर तुरंत अपनी पकड़ और मज़बूत कर देते। वह बेदम हाथ चलाते हुए दीवार-दर-दीवार पोतते जा रहा था। एक कमरे की चार दीवारें। दूसरे कमरे की चार दीवारें। भीतर बरामदे पर की दीवार। अब तक वह हाँफने लगा था। मुँह से झाग फूटने लगा था।

बाबूसाहब ज्यों-ज्यों उसे देखते, उनके अन्दर कुछ रिसने लगता। वे अंतर की गहराई में कहीं अपनी संवेदनायें इस लड़के से जुड़ती पा रहे थे। उन्हें एक-एक कर अपना बचपन, कैशोर्य और जवानी याद आने लगी। उन्हें अपने माता-पिता याद आये। बी० ए० पास होने के बाद से क्लर्क की नौकरी पाने तक ग्यारह माह याद आये जब माँ उनके सामने छोटे भाई के नास्ता

मांगने पर उसकी पीठ पर धम्म-धम्म धौल जमाती हुई चीखती--'मरता भी नहीं खब्बू कुत्ता कहीं का।' जब मां के अपनी फटी धोती दिखाने पर पिता बरस पड़ते -'सालभर से जवान लड़का बैठे-बैठे भात भकोस रहा है, मैंने उसे उसे अपना खून पिलाकर पढ़ा-लिखा दिया, अब अपने लाड़ले से कहो बदला चुकाये। अब मेरे से और नहीं होता।'--

इस लड़के की तरह उनके लिए बाप का होटल तो बंद नहीं हुआ था, पर मुफ्त की थाली से उठाया हुआ कौर हलक से नीचे न उतरता, गले में काँटा-सा चुभने लगता।

मुन्ना भीतर से एक कप चाय ले आया। उन्होंने चाय की प्याली ऊपर लड़के की ओर बढ़ा दी—"लो, पी लो पहले।" और मुन्ने से कहा—"एक कप मेरे लिये और ले आओ।

लड़के ने मुड़कर उनकी ओर देखा, हथेली की पीठ से, ओठों के कोर पोंछे और हाथ बढ़ाकर प्याली थाम ली। उसने नसेनी के पांवदान पर बैठते हुए प्याली ओठों से लगाई और गरम चाय सुड़कने लगा। लगातार तीन-चार घूंट भरते ही उसके गाल पर उभरी हुई हड्डिया पर एक चमक उग आयी। जाहिर है कि उसके जेहन में एक सुकून उत्तर आया था। उन्होंने भी उसके साथ-साथ चाय की सिप ली।—"तुम कित्ते क्लास तक पढ़े हो?" —उन्होंने पूछा। उसने प्याली से मुह ऊपर उठाया और उनकी ओर एक उदास मुसकान फेंक कर कहा—"मैं कहाँ पढ़ूंगा साहब, मुझे कभी स्कूल जाने का मौका ही नहीं लगा। जबसे होश संभाला तब से रोज पैसा लाके बाप को नहीं देता तो खाना नसीब न होता।····· पैले गाय-बकरी चराता था, अब सड़क पे मजूरी करता हूँ······।"

"तुम्हारा पढ़ने को मन नहीं करता?"

"करता है साहब! इस्कूल में लड़कों को पढ़ते देखकर बड़ा दिल करता है कि हम भी मेट्रिक हो जाते। मां कभी कहती भी थी तो वप्पा झटक देता—हूँ, पढ़के कौनो लाटसाहब बनेगा!······ई कोई मुफ़त का बासा नहीं है······साव, कहीं तो सोतेला ठेहरा······अब माँ चुप रहती है, नहीं तो पियक्कड़ मर्द के हाथों लात-घूंसा कौन खाये!"

बाबूसाहब आगे कुछ नहीं कह पाते। वह रीती प्याली नीचे बढ़ा देता है और मुड़कर तेजी से कूंची चलाने लगता है।

इस बीच मुंशी आकर उसका काम नाप जाता है। वह बाबूसाहब को सिर पर गमछा लपेटे नसेनी थामे हुए खड़ा देखकर तनिक मुसकराता है

गोया कोई मजे की बात हो। लेकिन वह एक और आदमी न देने का कोई जिक्र नहीं करता। बाबूसाहब भी चुपचाप उसे नाप लेते हुए देखते हैं। लड़का दो-तीन सीढ़ियाँ एक साथ फलांगकर जल्दी से नीचे उतरता है और जोश में आगे बढ़कर नपवाता है। —"ये भी नापो मुंशीजी, मैं आज सारा क्वाटर पूरा करके ही रहूँगा। मुझे पेसे चाहिए आज।"

मुंशी नापकर चला जाता है।

लड़का फिर से पूरे जोरों पर हाथ चलाने लगता है।

शाम घिर आती है। लड़का अब फिर हाँफने लगता है। उसके ओठों के कोरों पर वैसे ही झाग बुदबुदाने लगता है।

वह यकबयक रुक जाता है और नीचे उतरकर कहने लगता है—"अब नहीं होगा साहब, भूख से अंतड़ियाँ ऐंठ रही हैं।"

बाबूसाहब साँसत में पड़ गये। फिर से सारा सामान अन्दर करो, कल फिर से सब कुछ बाहर निकालो। उन्होंने पत्नी के पास जाकर आहिस्ते-से पूछा—"कुछ रोटियाँ हैं क्या ?"

"नहीं। दोपहर को ही सब खत्म। अभी तो आटा भी नहीं माड़ा गया।"

"बाबूसाहब ने मुसकराते हुए लड़के से कहा—"क्यों, तुम तो पूरा क्वार्टर खतम करके जाने वाले थे !"

"नहीं हो पा रहा साहब, पेट में दरद सुरू हो गिया। कल भी आधा पेट ही खाया रहा। आज तो तनिको नसीब नहीं हुआ सिवाय आपकी चाय के।"

इतना बोलने में ही उसकी छाती में धौंकनी चलने लगी थी।

"तो कल आ रहे हो ना ?"—बाबूसाहब ने उससे जुड़ने वाली अपनी संवेदनाओं को टटोलते हुए नर्मी से पूछा।

"बिलकुल साब ! सवेरे आते ही आते पूरा कर दूँगा, आप बेफिकिर रहिए। अब जाता हूँ, ओरसीयर से पैसे लेना ही है आज।"

उसने नसेनी बाहर की, चूने का डब्बा उठाकर आँगन में रखा और बाहर हो लिया।

दिन भर की फजीहत के बाद बाबूसाहब शाम को घूमने निकले थे। लौटते हुए अन्धेरा उतर आया। सहसा शोर सुनकर वे पगडंडी के किनारे घने पत्तों वाले दरख्त के नीचे फैलते धुँधलके की ओट में खड़े हो गये।

सामने पिंक कलर के खूबसूरत-से बंगलेनुमा क्वार्टर के आगे घुटे हुए सिर की तरह घास-छिला खुला आँगन है, जिसके इर्द-गिर्द लकड़ी की बल्लियाँ, लोहे की छड़ें और टीन की चद्दरें बिखरी पड़ी हैं। आँगन के बीचोंबीच लकड़ी के खम्भे पर ऊपर की ओर एक सफेद ट्यूब दूधिया रोशनी बिखेर रही है। उसी के समीप बेंत की कुर्सी पर ओवरसियर साहब बैठे हैं। बगल में उनका मुंशी सामने मेज पर फैले हुए कुछ कागजों पर हाथ में कलम लिये हुए झुका है। कुछ दूर बायीं ओर घुटनों को बाहों से घेरे हुए खिचड़ी बाल वाले दो-चार बूढ़े मजदूर नीचे जमीन पर उकड़ू बैठे हैं। सामने की ओर आठ-दस जवान या लड़के-से दीखने वाले मजूर खड़े हैं। उनसे कुछ अलग हटकर खड़ा वही लड़का चीख रहा था—"मैं पेसे लिये बिना ने-ई जाऊँगा, पूरे दस दिन होगिया साहब आज !"

"तुमने काम कहाँ पूरा किया ?" ओवरसियर साहब दहाड़े। जवान मजूरों ने लड़के की पैरवी की—"दे दीजिये साहब नहीं तो इसका बाप बहुत मारेगा इसको।"

—"मैंने एक बार कह दिया, बस्स। अब भाग यहां से, ढेर हेकड़ी मत बघार .....।"

और पलक झपकते ही ओवरसीयर-कम-ठेकेदार साहब की छाती पर सोने की चैन चमक उठी।

बूढ़े मजूरों की मरी दृष्टि उसकी चमक पर चिपक गयी। उन्होंने समझौते के लहजे में लड़के को पुचकारा—"साहब कह रहे हैं तो मान क्यों नहीं जाता बे ! एकई दिन की तो बात आय।"

"हाँ एकई दिन की बात है ! हफ्ता पूरे आज चौथा दिन हो गया। आज बिहान से भुक्खा हूँ, रात भी कुछ नहीं मिलेगा; उल्टे हड्डियाँ तड़का देगा बप्पा लात-घूसों से......।" लड़के की आँखों से गर्म लावा पिघलने लगा।

ओवरसीयर गर्जे--"मुंशी !"

मुंशी ने सिर उठा देखा।

—"भगाओ इस हरामजादे को यहाँ से। खबरदार जो कल से यह दिखा इधर .....।"

मुंशी ने देखा सामने कई जोड़ी आँखें अन्धेरे में विचरते भूखे भेड़ियों की तरह जल रही हैं। लेकिन बगल में बैठे साहब की त्योरियाँ भी उसकी नौकरी की गर्दन पर तलवार की धार की तरह चढ़ी हुई हैं। वह सहमते हुए उठा और लड़के की ओर कदम-दर-कदम बढ़ने लगा।

सहसा लड़का पटाखे की तरह फट पड़ा और ओठों पर चिंदियाँ छितराते धाड़ें मारने लगा।

बुत की तरह बैठे बेजान मजूरों में अब हरकत हुई। उनके झुके सिर ऊपर उठ गये और आँखों के घिसे काँच पर रोशनी दिप उठी। जवान मुट्ठियाँ हवा में तन गईं और उनकी वहशी नजरें सुलग उठीं।

आगे बढ़ते हुए मुंशी के पाँवों पर मानों खीले ठुक गये।

ओवरसीयर साहब गुर्राये—"क्या हुआ मुंशी!"

लेकिन दूसरे ही क्षण उन हिंस्र आँखों से निगाहें मिलते ही वे ठिठक गये। अचानक छाती पर चमक रही चैन कमीज के नीचे दुबक गई। भीतर शायद खतरे की घंटी घनघना उठी थी। सरकस के कुशल रिंगमास्टर की तरह उनकी दो अनुभवी आँखों ने परख लिया कि अब ये जानवर काबू से बाहर हो गये हैं और इन्हें सीखचों में वापस भेजना मुमकिन नहीं। वह उठे और यह कहकर झट अन्दर चले गये—"मुंशीजी, लड़के को पैसे दे दो।"

बाबूसाहब के ओठों पर मुसकान थिरक आयी। उन्हें लगा सुबह हो गयी है, लड़का नसैनी पर चढ़ा तेजी से कूची चलाये जा रहा है और वे उसे पकड़े हुए हैं।

कहानी

ध्वजा

■ शंकर

सद्दू ने गरदन में घंटी लटकायी और कंधे पर ध्वजा रखी। घंटी अपने वजन से झूलने लगी। वह यज्ञस्थलों से बाहर निकल सड़क पर आ गया।

आज यज्ञ का नौवां दिन था।

यज्ञस्थली नगरपालिका के मैदान में निर्मित हुई है। यज्ञ का मुख्य पंडाल यज्ञस्थली के बीच में है। पताकाएँ, फूल-पत्तियां और बंदनवार रोज-रोज बदले जा रहे हैं। पंडाल से ही सटा भंडार है, जो यज्ञ के शुरू होने के एक सप्ताह पहले लाल-लाल ईंटों की जुड़ाई करके बनाया गया था। अग्निकुंड मुख्य पंडाल में है। इस पंडाल के चारों तरफ अठारह छोटे-छोटे पंडाल हैं। हर पंडाल में अलग-अलग मंत्र पाठ हो रहा है। मुख्य पंडाल में माइक्रोफोन लगे हुए हैं। मंत्र-ध्वनियां शहर में स्थापित धर्मचौकियों तक प्रसारित हो रही हैं। दूसरी तरफ शामियाना गड़ा है। यहां दिन भर भजन-कीर्तन के कार्यक्रम चलते हैं और रात को रामलीला होती है। पूरी यज्ञस्थली शाम होते ही ट्यूबलाइटों के बीच जगमगाने लगती है।

हिदायत थी, वह सूरज उगने से पहले अपना काम सम्हाल ले। आने में देर होगी तो हाजिरी कटेगी। सुरती ने उसको समय पर जगा दिया था और उस वक्त थोड़ा-थोड़ा अंधेरा था। वह कुएँ की तरफ भागा था और जल्दी से वापस लौटा था। मंगू, गौरी और काले उस वक्त तक टाट पर ही लुढ़के हुए थे। उनके नन्हें-नन्हें चेहरों पर फैली बेफिक्री ने उसके मन में सुख की एक लहर दौड़ा दी थी, 'इनमें ही हमारी दुनिया है, री सुरती ! आज इनके लिए चावल का पिट्ठा बना दे......।' वह सूरज निकलने से पहले यज्ञस्थली पहुँच गया था। दूसरे जने भी आगे-पीछे पहुँचे थे-पान, चंदनरोड़ी, भोग की टोकरी में उठाकर भंडार में पहुँचाने जाने के काम पर लगा-सेवाराम। पत्तियाँ लाने, स्तंभों पर बासी पत्तियों की जगह नयी पत्तियाँ बांधने, बंदनवार बनाने के काम पर लगा-काशीनाथ। मुख्यद्वार पर गड़े आरती-स्तभों के पास ड्यूटी पर लगा जदु।

महाराज जी ने रोज की तरह आज भी दुहराया था। यह धर्म की ध्वजा है। इसको स्पर्श करती हुई हवा जहाँ तक जायेगी, वहाँ तक अधर्म का नाश होगा। ध्वजा किसी भी स्थिति में नीचे नहीं झुके, धरती का स्पर्श नहीं करे। हमेशा हाथ में तनी रहे। इसका अपमान होगा तो असुरों का प्रताप बढ़ेगा। जो इसका अपमान करेंगे, वे अधर्म के भागी होंगे। वह धर्म चौकियों की तरफ टाउनहाल के रास्ते से न जाकर मस्जिद के रास्ते से जाये। मिशन की तरफ जाने वाली कच्ची सड़क पर स्थापित खिजरौलिया धर्म चौकी को वह कभी नहीं छोड़े। धर्म परिक्रमा में घंटी हमेशा उसकी गरदन में लटकती रहे। इससे धर्म का घोष निकलेगा। इसकी आवाज जहाँ तक जाएगी वहाँ तक असुर भागेंगे। वह विश्राम करेगा, तो धर्मच्युत होवेगा।

सड़क पर आकर उसने यज्ञस्थली पर भरी-पूरी नजर दौड़ायी। यज्ञस्थली सजी-संवरी अलौकिक बस्ती की तरह दिखी। वह यादों में डूबने लगा। वह जिस दिन इस काम पर लगा था, महाराज जी उससे उसके एक दिन पहले मिले थे और यज्ञ दूसरे दिन शुरू हुआ था। अलस्सुबह मीनारों से रोशनी उतारने का वक्त था उस दिन। मस्जिद के रास्ते से गुजरते हुए महाराज जी ने उसे उंगलियों के इशारे से पास बुलाया था।

—तुम क्या हो? मेरा मतलब......धीरे से बता दो।—महाराज जी ने फुसफुसाकर पूछा था।

—मैं रोशनी वाला हूँ।

—वह तो मैंने जाना। मेरा मतबल......?

—मतलब......मैं रोशनी रखने वाला हूँ।

—तुम सदानंदन हो न? तुम गया में लक्ष्मी मोटर रिपेयरिंग वर्क्स में काम करते थे। एक सुबह शहर से लापता हो गए थे। शहर में खबर फैली थी कि तुम सदानंदन से सादिक बन गए हो न?

महाराज जी ने अपनी नजरें उसकी आंखों में गड़ा दी थीं। वह कुछ देर के लिए सकपका गया था। लेकिन तुरन्त ही उसकी सांसों में ताकत आ गई थी।

—गैरेज मालिक ने मुझे नौकरी से निकाल दिया था। कोई मेरी जमानत लेने को तैयार नहीं हुआ कि मुझे रिक्शा मिले। मैंने दर-दर की ठोकरें खायीं। मेरे औरत-बच्चों ने सड़कों पर हाथ पसारे। हबीब ने तरस खायी और मुझे यहां मस्जिद में मीनारों पर रोशनी रखने और पहरेदारी के काम पर रखवा दिया। मस्जिद के पिछवाड़े मौलाना ने मुझे कोठरी

दिलवायी। यहां मुझे सौ रुपये मिलते हैं। ऊपर से चार पसेरी चावल। अगले महीने से मुझे एक मन चावल मिलेगा। मेरे बच्चे तो भूख से नहीं चिल्लाते अब? बोलो, महाराज जी, यह अच्छा कि चोरी-पाकिट-मारी अच्छी?

—सुन, मैं तुम्हें डेढ़ सौ रुपये दूँगा। ऊपर से पूरा मन चावल। तू छोड़ दे मस्जिद। आ जा मेरे चबूतरे पर। शुद्धि-स्नान करा दूँगा। औरत बच्चों के साथ अभी रह गोशाले की कोठरी में। यज्ञ खतम हुआ कि यज्ञ स्थली पर मन्दिर और धर्मशाला बनेंगे। मैं तुम्हें धर्मशाले का मैनिजर रख दूँगा। बोल, कबूल हुआ?

कुछ देर वह खामोश खड़ा रह गया था फिर उसकी आंखों में खुशी चमक आयी थी।

—महाराज जी सच, दोगे न?

—हां हां, दूँगा।

—तो बोलिये, कब आऊँ मैं?

—शुभ काम में विलम्ब ठीक नहीं, तू कल सुबह आ जा। परसों से यज्ञ शुरू होगा।

वह महाराज जो के चरण छूने के लिए झुका था। लेकिन महाराज जी ने पैर खींच लिये थे: नहीं-नहीं, अभी नहीं, कल आ। पहले शुद्धि-स्नान करा दूं।'

धर्मशाले की मैनिजरी, डेढ़ सौ रुपये, पूरा मन चावल......किलकते हुए बच्चे......रात पर उसकी और सुरती की आंखों में सपने तैरते रहे थे। सुबह अंधेरा रहते वह औरत बच्चों को लेकर मस्जिद के पछिवाड़े से निकल गया था। महाराज जी ने कमंडल से जल निकाला था और सब पर छिड़का था, 'तुम आज से पवित्र हो गये। तुमने धर्म की उतनी प्रतिष्ठा रखी, जितनी सौ आदमी मिलकर भी नहीं रख पाते हैं। सम्हालो ध्वजा, पूरे नगर की परिक्रमा करो। दुनिया को दिखा दो कि तुमने धर्म की प्रतिष्ठा ऊँची कर दी।'

वह चलते चलते कबीरसराय मुहल्ले की तरफ मुड़ गया। महाराज जी के निर्देश उसके दिमाग में भनभनाने लगे। मौलाना बुलायें तो मत रुकना। सामने पड़ जायें तो आदाब मत बजाना। देखना, ध्वजा पर किसी की छाया मत पड़े।

वह मस्जिद के पास पहुँचा। मौलाना साहब सीढ़ियों पर खड़े थे। मौलाना बड़े नेकदिल आदमी हैं। महाराज जी ने कहा, तो क्या हुआ।

मौलाना ने रोजी दी, जिलाये रखा। तकलीफों से किसने उबारा उसे-मौलाना ने। हबीब ने उसकी सिफारिश की थी, तो मौलाना ने मान लिया। वरना बच्चे भूख से दम तोड़ चुके होते। सुरती सड़कों पर गुम गयी होती। मौलाना ने उसे जिन्दगी दी। बहुत एहसान हैं उनके। वह ख्यालों में गुम होता गया।

उसने चाहा, मौलाना साहब को आदाब बजा दे, लेकिन उसे मौका नहीं मिला। मौलाना साहब ने उसे देखा और झट से नजरें दूसरी तरफ फेर लीं। वे सीढ़ियों पर खड़े थे, लेकिन उनकी नजरें दूसरी तरफ टिकी थीं।

वह आगे बढ़ गया।

□

वह तेजी से चलते हुए कबीरसराय मुहल्ले में पहुंचा। यहां पहली धर्म चौकी थी। धर्म चौकी खाली थी। लाउडस्पीकर गुमसुम लटका था। स्तंभ के पास दरी नहीं बिछी थी। प्रबंधक महाराज जी अभी नहीं पहुंचे थे।

कुछ नहीं सूझा, तो उसने अंदाज लेने के ख्याल से स्तंभ को छू लिया। घी और सिन्दूर का लेप सूख गया था। अचानक उसकी नजर फूलों के बीच चमक रहे सिक्कों पर चली गयी। उसने चारों तरफ नजर दौड़ायी तो कोई नजर नहीं आया। उसने सिक्कों को उठा लिया। ये कुल पैंतीस पैसे थे। उसने फूलों को चारों तरफ बिखेरा कि शायद कुछ और सिक्के छिपे पड़े हों, लेकिन कुल इतने ही सिक्के थे। उसने डरते-डरते पैसे कमर में डाल लिये। फिर सड़क पर आ गया।

तिरटोलिया धर्म चौकी पर पहुंचकर उसने पाया—प्रबंधक महाराज जी चिल्ला रहे थे, "अनर्थ हो गया। रात को दोनों कलशों में रखा चावल कोई उठा ले गया। कलश सही-सलामत हैं, टूटे नहीं हैं। यह चौक के छुट्टे सांड़ का काम नहीं हो सकता है। यह किसी भिखमंगे का काम है...... या मुहल्ला वाले भुक्खड़ हो गये हैं......।" वह प्रबंधक महाराज की तरफ मुखातिब नहीं हुआ। उसे डर हुआ, प्रबंधक महाराज उसे यहां बैठाकर खुद भंडारा चले जायेंगे, सभी शिकायत करेंगे—ध्वजावाहक कहीं आराम करने लगा। उसने हाजिरी बनायी और चलता बना।

सूरज सिर पर आगे लग गया, तो उसने कदम तेज कर दिये। अब चूना भट्ठी मुहल्ला आएगा। चूना भट्ठी मुहल्ला यानी सातवीं धर्म चौकी। यह मुहल्ला शहर का पश्चिमी छोर था। इस मुहल्ले में सिर्फ एक ही दूकान

थी शरफू की दूकान। चूनाभट्ठी चलती थी तो दूकानें थी। अब न चूना-भट्ठी चलती है, न दूकानें हैं। यहां पहुंचने पर शहर के दो हिस्सों की धर्म परिक्रमा पूरी हो जाएगी। उसे शहर में वापस घुसना होगा और दक्षिण के मुहल्ले की तरफ जाना होगा।

छठीं धर्मचौकी खाकी डेरा से हो चुकने के बाद उसके पैरों में रोज की तरह आज भी तेजी आ गई थी। दोपहर का दोना उसे इसी सातवीं धर्मचौकी पर मिलेगा। अब तक वह छह-सात मील का चक्कर पूरा कर चुका था और उसे भूख लग आयी थी। वह जिस समय धर्मचौकी पहुँचा, प्रबंधक महाराज उस समय तक भगवान का भोग पा चुके थे। महाराज जी ने उसकी ओर दोना फेंका, तो उसने लपक लिया। उसकी नाक में एक खुशबू घुस आयी। आठ पूड़ियां और गमकती हुई सब्जी। वह झट-पट चार पूड़ियां निगल गया। पांचवीं पूड़ी उठाने से पहले उसने पूडियों को उठाकर गिना। दोने में चार पूड़ियां बची थीं। अचानक उसे पूड़ियों पर मंगू, गौरी और काले के चेहरे नजर आ गये। वह बुदबुदाया, 'इतनमें ही हमारी दुनिया है री सुरती।' उसने धीरे से दोने को लपेटा और पाकिट में डाल लिया।

पानी के लिए वह शरफू की दूकान पर आकर रुका। महाराज जी ने उसे अपने घड़े से किसी भी दिन पानी नहीं लेने दिया। भले रोज दो पूड़ियां ज्यादा दे दी थीं। सामने वाली ऊँची बेंच पर फुल्लोरियां, बन, घुघनी और चनाचूर की थालियां सजी हुई थीं। कोने में पानी का टब था। उसने ध्वजा कंधे से हटायी और टब की टोंटी के पास झुक गया। ध्वजा को बेंच के सहारे टिकाकर उसने गटागट पानी पिया। फिर उसने ध्वजा को झटके से हाथों में उठाया और दूकान से बाहर आ गया।

□

खिजरौलिया में आखिरी धर्मचौकी थी। यह शहर से बाहर पहाड़ी की तरफ जाने वाले रास्ते पर बसा है। इसी रास्ते पर आगे मिशन-आफिस, मिशन अस्पताल है। मिशन के बाद चार-पांच छोटे-छोटे गांव पड़ते है और उनके बाद पहाड़ी शुरू हो जाती है। सदरू खिजरौलिया पहुंचा तो शाम हो गयी।

धर्मचौकी खाली पड़ी थी। प्रबंधक महाराज जी ने बताया-जब तक लाउडस्पीकर नहीं लगेगा, लोग नहीं जुटेंगे। ऐसे मिशन की बराबरी नहीं की जा सकती। उसने हाजिरी बनायी और लौटने लगा।

घंटे भर में दिन गुजर जायेगा। सददू अब दलेलकोठी पहुँचेगा। वहां से चौक। चौक से होते हुए वह भीतर की गली से तिरछा निकलेगा और कबीर सराय पहुँच जाएगा। कबीर सराय होते हुए वह यज्ञस्थली पहुंचेगा। वहां वह महाराज जी को दिन भर का ब्योरा देगा। भंडार से चावलसिद्धा लेगा। राम-लीला वह नहीं देखेगा। चावल लिए वह सीधे अपनी कोठरी लौटेगा और चावल की पोटली सुरती को थमायेगा।

खिजरौलिया और दलेलकोठी के बीच पड़ने वाले ताल के पास पहुँचकर उसने रोज की तरह महसूस किया। मैदान फराकित से छुट्टी पा लेनी चाहिये। शरह में घुस जाने पर दूसरी जगह नहीं मिलती है। वह कच्ची सड़क छोड़कर नीचे पेड़ों की तरफ उतर गया।

दुबारा सड़क पर आकर वह शहर की तरफ बढ़ गया। शहर के छोर पर एक जीप फंसी दिखी। पास आस आकर उसने अंदाज लगाया, यह पहाड़ी के पास वाले मिशन की जीप होगी। इसका अगला चक्का एक तरफ नीचे खड्डे में फंसा हुआ था। सड़क पर तीन मेमें खड़ी थीं। ड्राइवर स्टार्ट लेना चाहता था लेकिन चक्का तेजी से घूमघूमकर रह जाता था। आगे बढ़ नहीं रहा था। मेमें पीछे से धक्का देती थीं, लेकिन जीप टस से मस नहीं हो रही थी।

वह जीप के पास आकर रुक गया। मेमें जीप को ठेलना छोड़कर खड़ी हो गयीं। वे थकी हुई दिखीं।

'आप काइंडली हेल्प करेंगे, सर? —एक मेम ने उसकी ओर याचना भरी दृष्टि से देखा। फिर जीप में रखे पर्स से रुपये का एक नोट निकाल लायी और उसकी ओर बढ़ा दिया।

'हाँ-हाँ, मैं ठेल, दूँगा।' सददू ने नोट ले लिया। उसने फुर्ती से ध्वजा को डंडे से अलग किया। ध्वजा कमर में बांध ली और डडे को जीप के चक्के के पास लगा दिया। ड्राइवर ने जीप स्टार्ट की। उसने थोड़ा झुककर कंधे से डंडे पर जोर लगाया। चक्का ने पांच-छह बार भर-भर किया। जीप झटके से सड़क पर आ गयी। वह गिरते-गिरते बचा। जीप में रखा मिल्क पाउडर का ड्रम नीचे जमीन पर गिर गया। मिल्क पाउडर जमीन पर बिखर गया।

मेंमे उसकी तरफ आकर खड़ी हो गयी। उनकी आंखों में चमक थी। चेहरे पर खुशी बिखर आयी थी। एक मेम ने उस पर आखें टिकाई— 'आपका नाम सर?'

'सदद्दू'—उसने जबाब दिया।

'ग्रो, सैड्यू ? थैंक्स मिस्टर सैड्यू। हम लोग ग्रापका वेलकम करेगें। लोग बहुत ग्रेटफुल हैं। क्राइस्ट ब्लेसेज यू, मिस्टर सैड्यू......मेंमे चहकते चहकते गंभीर हो गयी। दूसरी मेम ने जीप में हाथ बढ़ाकर पावरोटी का पैकेट निकाला।

'मिस्टर सैड्यू, यह हम लोगों का प्रेजेंट......'मेम ने उसे पाव रोटी दी, तो उसने दूसरे हाथ में रख ली। इस बार उसकी ग्रांखों में चमक उभरी।

ड्राइवर ने जमीन पर गिरा ड्रम उठाकर जीप में रख लिया। मेमें जीप में बैठ गयीं। ड्राइवर ने जीप स्टार्ट की ग्रौर वह ग्रागे बढ़ गयी। जीप से एक साथ कई हाथ निकले ग्रौर हिलने लगे। सदद्दू ने भी हाथ उठा दिया। फिर तुरंत दोनों हाथों से ध्वजा कमर से ग्रलग खीची। जमीन पर गिरे पाउडर को जल्दी जल्दी उठाकर ध्वजा पर बटोरा ग्रौर गांठ बांध ली।

उसने उठकर देखा, तो धुंधली होती हुई जीप दिखलायी पड़ी। उसने दुबारा हाथ उठाया ग्रौर देर तक हिलाया।

कहानी

लफंगा

■ अब्दुल बिस्मिल्लाह

बाहर अन्धेरा घुप्प था और टिप-टिप बूँदें पड़ रही थीं। रास्ते में कीचड़ था। कहीं-कहीं गोबर और कुत्तों या बच्चों के मल भी होंगे—उसने कल्पना की! और अचानक ही उसका दाहिना पाँव कीचड़ में बुरी तरह धंस गया। वह चिहुँक उठा। जैसे किसी कीड़े ने काट खाया हो उसे। और अनायास ही घासों में दुबके झींगुरों की झन्नाहट उसे अरूचिकर लगने लगी। उसने, अन्दाज़ से ही अपना पाँव कीचड़ से निकालकर ठोस धरती पर जमाने की कोशिश की, लेकिन फिसलकर वह पुनः कीचड़ में आ गया। और उसे लगा कि अन्धेरा आज कुछ ज़्यादा ही गाढ़ा है!

हालाकि गाँव में बिजली आ गयी है और अवैध ढंग से लोगों ने तार में कटिया फँसा-फँसाकर कई-कई बल्ब जला रखे हैं अपने-अपने घरों में, लेकिन लाइन-मैन इधर कुछ नाखुश हो गया है। इसीलिये दो-चार दिनों से लाइन कट गयी है। जब तक उसे पीने भर को मिलता रहा, तब तक तो पूरा गांव अन्जोर बना रहा, लेकिन जैसे ही गाँव वालों में चेतना जागृत हुई, चारों ओर अन्धेरा छा गया......!

वह अपने मकान के सामने पहुँचकर, कुएं के पास वाले गड्ढे में भरे पानी में अपने पाँव साफ करता है और चबूतरे पर चढ़कर धीरे से कुंडी खटखटाता है। वह डरता है कि कहीं भैया की नींद न टूट जाय, वरना अभी शुरू हो जाएँगे......उपदेश, प्रताड़ना, गालियाँ......

कुंडी चुनिया खोलती है। उसे देखकर वह खुश होता है। हालांकि भाभी के जागने पर भी कोई खास बुरा नहीं होता, पर चुनिया तो एकदम अल्ला मियाँ की गाय है।

"आज बहुत देर कर दी!"

चुनिया बोलती है और बोलने के साथ ही जंभाई लेती है। वह ओरी के पानी से खुद को बचाता हुआ भीतर आ जाता है और किवाड़ भेड़ते हुए 'हूँ' कहकर बावर्चीखाने की ओर बढ़ जाता है।

"भैया तो फिर बमकते रहे होंगे ?"

"तब क्या छोड़ देंगे ? सुबह देखो क्या होता है ?"

"मतलब ?"

उसके हाथ का कौर मुँह में जाते-जाते रुक गया !

"मतलब क्या ! तुहीं जानते हो कि वे क्या कर सकते हैं ? कह रहे थे, कल वे तुम्हें निकाल देंगे घर से !"

"ठीक है, निकाल दें !"

वह निर्वेद भाव से बोलता है और उठ जाता है। चुनिया बर्तन समेट कर उसकी चारपाई के पास पहुँच जाती है !

"क्या है ? जाओ, तुम सोओ !"

वह लगभग कठोर होकर चुनिया से बोलता है, तो वह जवाब में ज़मीन पर बैठ जाती है !

"आख़िर तुम इतनी-इतनी रात तक क्या करते हो बाहर ? तुम क्यों अपने को चौपट कर रहे हो ? भैया जो कहते हैं, क्यों नहीं करते ? पढ़ाई भी तुमने छोड़ दी और दिन-रात नीच ज़ातों के साथ घूमते रहते हो ! तुम्हारे बारे में न जाने कैसी-कैसी बातें फ़ैली हुई हैं ! उस रोज़ हाफिज्जी आकर क्या कह रहे थे, मालूम है ?"

"हाँ मालूम है ! तुम जाकर सोओ !"

वह उसी तरह कठोर बना रहा तो चुनिया घबरा-सी गयी और थोड़ी देर गुमसुम बने रहने के बाद उठ गयी !

☐

वह लेट गया। लालटेन के मटमैले प्रकाश में उसने आँखें मिचमिचायीं और खपड़ैले के उस भाग पर उन्हें टिका दिया जहाँ से धीरे-धीरे पानी रिस रहा था। बूँदे अब भी टिप-टिप कर रही थीं। एक ठण्डी सी बूँद बर्फ़ की डली की भाँति उसकी छाती पर भी गिरी, तो उठकर उसने चारपायी दूसरी ओर कर ली ! अब दीवार के मुक्के में से आने वाली हवा उसके चेहरे से एकदम सीधे टकरा रही थी और यह परिवर्तन उसे अच्छा लग रहा था !

सुबह क्या होगा ? उसने लगभग न चाहते हुए ही यह बात सोची और इस सवाल से जुड़े अनेक सन्दर्भ उसने दिमाग़ से टकराने लगे। अब्बा की मौत, अम्माँ की बीमारी और बीमारी की उस दशा में भी भैया का उनसे

लड़ना—कभी इलाज का पैसा देने के लिये तो कभी बक्से की चाभी के लिये......उफ़ ! वह घबरा उठा। उधर माँ की मौत हुई, इधर भैया ने अपनी बीबी से कह कर उनके आँचल से बक्से की चाभी खुलवा ली। छोटे भैया खड़े-खड़े देखते रहे, बोले कुछ नहीं ! लेकिन चहारम के बाद ही दोनों में ठन गयी। एक रोज़ तो जमकर लड़ाई हुई उनमें और देखते ही देखते उनकी बीबियाँ भी आपस में उलझ गयीं। चुनिया उन्हें छुड़ाने पहुँची तो उसे इस तरह धकेला गया कि बेचारी मुँह के बल गिर पड़ी और दाँतों से खून बह आया ! वह गुस्से में भरा खड़ा था सिर्फ़ ! बोलता भी तो भला क्या बोलता ? मनुष्य के भीतर का पशु जब बाहर आ जाता है तो वह अन्य किसी भी पशु से अधिक खूखार होता है। उसकी पशुता को शब्दों से शायद नहीं रोका जा सकता ! खैर......

उसी रोज़ बँटवारा हो गया। मकान का एक हिस्सा भैया के क़ब्ज़े में और दूसरा हिस्सा छोटे भैया के ! चुनिया छोटे भैया की ओर और वह भैया की ओर !

वह तमक उठा था उस रोज़ ! चीज़ों के साथ-साथ आदमियों का यह बंटवारा उसे क़तई नागवार गुज़रा था। गोया कि हम आदमी नहीं, मात्र जीव हैं—कुत्ते बिल्लियों या बकरियों की मानिन्द ! कि घर के बंटवारे में हमें भी बाँट लिया गया ! वह एक अन्तहीन उदासी में डूबता चला गया था......

लेकिन स्थितियों में कोई रद्दो-बदल नहीं हुआ। बल्कि बंटवारे की शक्लें और भी विकसित होती गयीं। मसलन, चुनिया खाना छोटे भैया की तरफ़ खाएगी और कपड़ों की ज़िम्मेदारी भैया पर रहेगी ! मुन्ने की फ़ीस छोटे भैया देंगे, खाना वह भैया की ओर खाएगा और कपड़ों की ज़िम्मेदारी दोनों पर होगी !

'दोनों पर' का क्या मतलब ? उस अकेले को ही दो भागों में बांट दिया गया है। गोया कि उसका आधा हिस्सा छोटे भैया के क़ब्ज़े में है और आधा भैया के ! नहीं ! अपने अस्तित्व का यह बंटबारा वह नहीं चाहता ! उसने मन ही मन कोई विकल्प ढूँढ़ने की कोशिश की, पर असफल रहा ! और उसे बाँट लिया गया !

भैया डाक्टरी करते हैं और छोटे भैया टेलर हैं ! हालांकि कहने को तो उसके एक चाचा भी हैं, पर शहर में रहकर वे न जाने कौन सी पढ़ाई पढ़ते हैं कि घर पर तो कभी-कभी ही आते हैं। अतः उसके अस्तित्व को

अपनी-अपनी ओर खींचने में दोनों भाई पूरी तरह कामयाब रहते हैं ! स्कूल से आने के बाद बारी-बारी से उसे दोनों ओर ट्रेनिंग लेनी होती ! थोड़ी देर तक वह कपड़ों में काज-बटन करना सीखता और कुछ समय तक घाव पर पट्टी बाँधना, इंजेक्शन भरना, दवाओं के नाम जानना आदि ! और इन कार्यों में जैसे-जैसे वह निपुण होता गया, उसके वजूद का बंटवारा ज़ोर पकड़ता गया। वह जब स्कूल से लौटता, तो लगभग एक साथ ही दोनों गृहस्वामी चीख़ उठते, "मुन्ने !" और वह सुविधानुसार कभी छोटे भैया की ओर तो कभी बड़े भैया की ओर लपक जाता ! उस वक्त छोटे भैया किसी ब्लाउज या पेटीकोट में फंसे होते और उसे किसी शर्ट में जल्द से जल्द काज बनाने का काम थमा दिया जाता। या अपनी गर्दभरी टेबुल के सामने हाथों में सिरिंज पकड़े, मुँह में पान की सुगन्धित पीक भरे, अपने नाटे क़द को थोड़ा सा उचकाने की कोशिश करते भैया बिल्कुल डॉक्टरी पोज़ में खड़े होते और उसे काग़ज़ के डिब्बे से पैरासिटामाल या बेलाडेनाल या क्रोसीन या इसी क़िस्म की कोई दवा निकालनी होती या किसी के सड़ते हुए ज़ख्म को धोने का ज़िम्मेदारीपूर्ण कार्य करना होता !

हालांकि कक्षाओं की बकवास से उत्पन्न दिन भर की थकान और भूख से उसका बुरा हाल रहता, पर किसी भी कार्य को छोड़ देना उसके लिये सम्भव नहीं होता। वह चुपचाप अपने काम में जुट जाता ! लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता कि अभी एक ओर का काम पूरा न होता कि दूसरी ओर से पुकार आना शुरू हो जाती और सैद्धान्तिक रूप से बँटे हुए अपने अस्तित्व को वह व्यावहारिक रूप से बाँटने में प्रायः असमर्थ हो जाता ! तब कभी-कभी उसे झिड़कियाँ भी सुनने को मिलतीं और प्रायः वह रुआंसा हो जाता। वही नहीं, चुनिया की भी यही दशा थी और दोनों ही लगभग उस पूरे घर में एक बिखरी हुई ज़िन्दगी को जीने के लिये विवश थे !

कभी-कभी तो यह बिखराव और भी खलता था। उस वक्त खासकर, जब घर में कोई मेहमान आता और इस बात पर निर्णय लिया जाता कि मेहमान का खाना किधर पकेगा ? कभी रोटियाँ इधर पकतीं और चावल उधर से आता, और दाल या सालन के लिए दोनों तरफ़ पर मालमा तय होता। हालांकि तहज़ीब की रक्षा के लिये उस रोज एक ही दस्तरखान पर बैठकर सभी लोग खाना खाते, लेकिन बर्तनों और खाद्य सामग्रियों की विचित्र सी विविधता चूल्हों के अलगाव की पोल बिल्कुल सहज ढंग से खोल देती थी और एक अनिर्वचनीय लज्जा व ग्लानि से वह बिखरने लगता था !

□

और गर्मियों में जब उसके चाचा छुट्टियाँ मनाने के लिये गाँव पहुँचे तो एक रोज़ सड़क की पुलिया पर बैठकर उसने अपने बिखरते हुए वजूद को उनके सामने पेश किया था। और जवाब में उन्होंने जो कुछ कहा था वह किसी दर्शन से कम जटिल नहीं था! वह अपनी समस्याओं का विकल्प ढूँढ़ना चाहता था, पर उसके सामने समस्याओं से एकदम कटी हुई बातें रखी जा रही थीं। शायद इसीलिये उसे लगा कि अब कोई रास्ता नहीं है—सिवा इसके कि वह घर से भाग जाय। लेकिन उसी क्षण उसने सुना, कि उसके पास में जो दुबला-पतला व्यक्ति बैठा था—ऊपर से अवयस्क दिखाई पड़ने वाला, वह बिल्कुल नये अन्दाज में कुछ कह रहा है!

"मुन्ने! तुम बहुत कुछ कर सकते हो! लेकिन ज़रूरत इस बात की है कि तुम अपनी ताक़त को, अपनी सोच को दूसरी ओर मोड़ो!

और वे ख़ामोश हो गये थे! जैसे अचानक ही एक भरपूर तरंग उठा कर किसी परिवर्तन की आशा में समुद्र का वेग थम जाए!

वह एकटक उन्हें देख रहा था। और शनैः शनैः उसके आगे एक पूरा का पूरा व्यक्तित्व उभरने लगा था। मामूली पैण्ट-बुशर्ट पहने, कन्धे पर थैला लटकाए, थैले में किताबें भरे...वे कैसी किताबें हैं? उनमें क्या लिखा होगा? वह बेचैन हो उठा! चाहा कि पूछे, लेकिन वे पुनः शुरू हो गये थे!

"तुम जिस दर्द को झेल रहे हो उसे मैं समझता हूँ, लेकिन वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है; जितना कि उन लोगों का दर्द जो पेट भर अन्न और तन भर वस्त्र के लिये तरस रहे हैं। अपनी पीड़ा को उनकी पीड़ा के सामने रखकर देखो ज़रा; तुम्हें लगेगा कि तुम्हारी पीड़ा छोटी पड़ गयी है। फिर जिस व्यवस्था में तुम जी रहे हो, वह सामंतवादी व्यवस्था का ही दूसरा संस्करण है। और इस व्यवस्था का यही चरित्र है, कि वह अस्तित्व की अहमियत को नज़र-अन्दाज़ करती है। यह व्यवस्था दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाकर तुष्ट होती है और अपने स्वार्थ को सफल बनाना ही इसका एकमात्र उद्देश्य होता है। अतः, ज़रूरत इस बात की है कि व्यवस्था में बदलाव आये!"

"बदलाव किस तरह आएगा? अपने ही परिवार को हम किस तरह बदल सकते हैं?"

"मैंने किसी एक परिवार की बात नहीं कही है, हमारा परिवार भी उस व्यवस्था का अंग है। बदलाव व्यवस्था में लाना है, न कि एक परिवार में। फिर, अपनी पारिवारिक मान्यताओं को हम इतनी जल्दी बदल भी

नहीं सकते !"

इतना कहकर वे पुलिया के नीचे झांकने लगे। शायद कोई सरसराहट हुई थी। वह आकाश की ओर देखने लगा, जहां बादल का एक सफ़ेद टुकड़ा चांद के कुछ और क़रीब आ गया था !

"कुछ नहीं है! कोई गिलहरी-बिलहरी होगी! ख़ैर .....तुम्हें मालूम है न, कि किस तरह हाफ़िज़ जी ने नूरे धुनिया की बीघा भर ज़मीन हड़प ली है?"

"हां!"

"तो यही है वह व्यवस्था, जिसे बदलना है!"

"लेकिन यह मुमकिन कैसे होगा? हाफ़िज़ जी तो बहुत बड़े आदमी हैं, उनका मुक़ाबला नूरे धुनिया कैसे कर सकता है?"

"क्यों नहीं कर सकता? क्या नूरे धुनिया को तुम अकेले समझते हो? धुनिया तो धुनिया, सभी धुनिया नूरे धुनिया हैं। यही नहीं, गांव के नाई, फकीर, जुलाहे—सभी उस नूरे धुनिया के बराबर हैं। बराबर इसलिये हैं कि ये सब के सब ग़रीब हैं। और इसी तरह हाफ़िज़ जी, खां साहब, सैयद साहब और हमारे घर के लोग भी—ये सब एक तरफ हैं; क्योंकि ये ग़रीब नहीं हैं। और हैं भी तो अपनी पिछली अमीरी का घमण्ड है इन्हें! जैसे यही समझलो कि तुम्हारे छोटे भैया रमज़ान मियां कपड़े सिलते हैं, लेकिन वे दर्ज़ी नहीं हैं। शब्बू दर्ज़ी से उनका दूर का भी रिश्ता नहीं है......तो मुन्ने, यह है वह भेद, जो लड़ाई की मुख्य जड़ है। और सारी तकलीफें भी इसी जड़ में समायी हुई है। लेकिन यह जड़ तब तक मजबूत होती रहेगी, जब तक नूरे धुनिया अकेला बना रहेगा। जरूरत इस बात की है कि लोग संगठित हों। धुनिया, दर्ज़ी, नाई, जुलाहे, चुड़िहार—सब एक होकर अपने दुश्मन के ख़िलाफ़ खड़े हों ....."

और अचानक वे चुप हो गये थे। हाफ़िज़ जी का बड़ा लड़का कन्धे पर लाठी रखे सामने आ गया था।

वह खड़ा हो गया था। चाचाजी भी उठ गये थे। हाफ़िज़ जी के लड़के ने सलाम किया तो एक चलताऊ सा जवाब देकर वे पुलिया से नीचे उतर गये थे!

रास्ते में उसने एक अलग तरह का सवाल किया था, "चाचाजी आप मज़हब को मानते हैं?"

"मज़हब ने तो आज तक किसी का कोई भला नहीं किया है। हाँ, उसके नाम पर अत्याचार बहुत हुए हैं।" यह जवाब भी एक अलग तरह का था, जिसने उसे चुप कर दिया था।"

□

ग्रौर छुट्टियाँ समाप्त होते ही वे चले गये थे। उसी तरह, मामूली पैन्ट-बुशर्ट पहने, कन्धे से थैला लटकाये, थैले में किताबें भरे.....लेकिन कुछ किताबें उन्होंने छोड़ दी थीं—उसके लिये ! वे कई तरह की किताबें थीं। उनमें कुछ देशी थीं ग्रौर कुछ विदेशी। कुछ हिन्दी में थीं ग्रौर कुछ उर्दू में। उसने उन्हें पढ़ा। ग्रौर उसे लगा कि ये किताबें उन किताबों से बिल्कुल ग्रलग हैं, जो उसे पाठ्यक्रम में पढ़ायी जाती हैं। काश ! इन किताबों में से कोई ग्रध्याय रखा जा सकता उनमें। वह सोचता ग्रौर पढ़ी हुई किताबों के बारे में मनन करता ! कुछ पंक्तियाँ तो एकदम से उसे याद हो गयी थीं। जैसे : 'ग्रवाम को मुनज़्ज़म करना हमारा फ़र्ज है।' या 'दुश्मन जिस चीज़ की मुखालिफ़त करता है हमें उसकी हिमायत करनी चाहिए ग्रौर दुश्मन जिस चीज़ की हिमायत करता है हमें उसकी मुखालिफ़त करनी चाहिये !'

ग्रौर उसकी दिलचस्पी तब्दील होने लगी ! वह ग्रपनी तकलीफ़ से ग्रलग हटकर उनकी तकलीफ़ों पर सोचने लगा, जो उससे कहीं ज़्यादा मजबूर थे। उसे रह-रह कर नूरे धुनिया की वह ज़मीन याद ग्राती जो ग्रब हाफ़िज़ जी के क़ब्ज़े में थी ग्रौर जिस पर उनका गोंइड़ा बना हुग्रा था। उसे याद है कि वह ज़मीन मुहर्रम के ग्रवसर पर पटा-बनेठी खेलने के लिये ली गयी थी ग्रौर मज़हब का सवाल समझकर नूरे चुप हो गया था। लेकिन धीरे-धीरे वहाँ हाफ़िज़ जी के जानवर बंधने लगे, फिर एक ग्रच्छा-खासा गोशाला ही वहाँ बना दिया गया।

वह उस गोशाले के बारे में सोचता ग्रौर तड़प उठता ! शायद उतनी तड़प नूरे धुनिया के दिल में भी नहीं थी, जिसने कितने-कितने उपायों से थोड़ी सी ज़मीन हासिल की थी। ग्रब उसके पास क्या बचा है ? तालाब के उस पार बस थोड़ी सी ज़मीन ग्रौर है, लेकिन बेकार ! ग्रच्छी ज़मीन में तो हाफ़िज जी का गोशाला बन गया है !

यह ग्रत्याचार है ! उसने यह बात धुनियों, फ़कीरों ग्रौर जुलाहों ग्रादि के बीच ही नहीं, एक बार सार्वजनिक रूप से भी कही। ग्रौर देखते ही देखते यह मशहूर हो गया कि मुन्ने लफंगा हो गया है ! पढ़ता-लिखता नहीं बस स्कूल से ग्राकर ग्राधी-ग्राधी रात तक फकिराने ग्रौर धुनियाने में लफंगई करता है। नूरे धुनिया की लड़की के साथ उसके ऐसे-वैसे सम्बन्ध भी नज़र ग्रा रहे हैं। यह बात ग्रच्छी नहीं है !

हाफ़िज जी ने यह शिकायत पहले छोटे भैया से की ग्रौर बाद में भैया से। ज़ाहिर है कि सुनते ही वह ग्रागबबूला हो गये। उसने कई तरह से

अपनी सफ़ाई देनी चाही, लेकिन नतीजा कुछ नही निकला। उसे सरे आम लफंगा घोषित कर दिया गया और पूरे मुहल्ले में वह शक की निगाह से देखा जाने लगा। यही नहीं, फ़ीस-डे को उसे फ़ीस नहीं दी गयी और नाम कट गया तो अफ़वाह उड़ायी गयी कि मुन्ने ने पढ़ाई-लिखाई सब छोड़ दी है।

उस वक्त उसके साथियों ने चाहा था कि चन्दे से उसकी फ़ीस की व्यवस्था हो जाए, पर उसने इनकार कर दिया था।

□

और एक दिन उसे मालूम हुआ कि हाफ़िज जी के बड़े साहबज़ादे को कोई बढ़िया सा ख़्वाब दिखाई पड़ा है। उसने देखा है कि शब्बू दर्जी की तालाब-पार वाली ज़मीन में कोई शहीद बाबा रहते हैं। उन्होंने हुक्म दिया है कि वहां एक मजार बनवाया जाय और बारावफ़ात के चांद में सात तारीख़ को उर्स लगवाया जाय ! यह बात हाफ़िज जी से उसने बताई और हाफ़िज जी ने शब्बू को बुलवा भेजा।

"शब्बू ! तुमने वाक़ई कोई बहुत बड़ा नेक काम किया है, वरना और किसी के खेत में शहीद बाबा नहीं निकले।"

उन्होंने भूमिका बांधी और विस्तार से सारी योजनाएं सामने रख दीं। शब्बू बावजूद मुन्ने की हिदायतों के ख़ामोश रहा। और ख़ामोशी को मंजूरी की निशानी समझकर दूसरे रोज़ ही शब्बू के खेत में लम्बे-लम्ब कुछ ईंटें रख दी गयीं। शहीद बाबा रात भर में ही नीचे से ऊपर आ गये !

वह बमक उठा !

"आप वहां गूंगे क्यों हो गये थे ? कहते नहीं बना कि हम यह सब नही मानते।"

शब्बू चुप ! भीतर से उसकी बीबी की आवाज़ आयी, "बोलें कैसे, बाबा का हुकुम टालना कोई हंसी-खेल है ?"

उसे गुस्सा आ गया। वह अपने को संभालने में असमर्थ हो गया !

"हां बाबा का हुक्म आप ही लोगों के लिये तो आएगा ही, वह भी हाफ़िज जी के ज़रिए ! ऐसा ही था तो वह ख़्वाब आप ही लोगों को क्यों नहीं दिखाई पड़ा ? या शहीद बाबा उनके किसी खेत में क्यों नहीं बसते ?"

"तुम ठीक कह रहे हो।" वहीं खड़े सुबराती नाई ने कहना शुरू किया," सरऊ को इस्तिजा करने का सहूर नहीं है—पेशाब करके लुंगी में पोंछने वाले, चले हैं शहीद बाबा का ख़्वाब देखने ! यह सब हाफ़िज जी की चाल है और कुछ नहीं !"

सुबराती की बात से उसे बल मिला। और अपनी छोड़ी हुई बात उसने पुनः शुरू कर दी।

"अभी आप लोगों ने देखा है कि किस तरह नूरे भाई की ज़मीन इन लोगों ने हड़पी है, फिर भी आप लोग सबक़ नहीं ले सके! किस-किस तरीक़े से तो आप लोगों ने थोड़ी-बहुत ज़मीन हासिल की है, और ये चाहते हैं कि वह भी इनके क़ब्जे में आ जाए। ताकि पुरानी ज़मीदारी फिर बरक़रार हो जाए। आप लोग अपनी ही ज़मीन में इनके नौकर बनकर हल चलाएं। मेरी समझ में नहीं आता कि इतनी सीधी-सी बात आप लोगों की समझ में क्यों नहीं आती? जहां मज़हब की लुआठी दिखाई गयी, उसकी आंच में लगे आप कबाब बनने! मैं कहता हूँ यह सब साज़िश है साज़िश! आप लोग अगर इसीं तरह ख़ामोश रहे तो एक रोज़ सबके सब इनकी गुलामी करेंगे और उस वक़्त फिर कोई चारा नहीं रहेगा।"

वह कुछ ज्यादा ही बोल गया था उस रोज़ और उसका असर भी कुछ ज़्यादा ही हुआ था। लोग ख़ामोश थे और उस ख़ामोशी में चिन्तन की मात्रा कुछ ज़्यादा ही थी!

वह लौट आया था! उस रोज़ भी उसे काफ़ी देर हो गयी थी और मुहल्ले में सोता पड़ गया था! लेकिन भैया जाग रहे थे!

"कहाँ थे?"

उसे देखते ही उनके पीक भरे मुंह से यह सवाल निकला था और एक विषैली सी चीज़ पूरे वातावरण में फैल गयी थी!

"शब्बू चाचा के घर!"

शबुआ के घर या नूरे के घर?

भैया का मंतव्य वह समझ गया था। इसलिये ख़ामोश रहा!

"बोलता क्यों नहीं बे?"

आप जो भी समझ लें!"

उसने आहिस्ता से कहा और वहाँ से हट गया। भैया बहुत देर तक गरजते रहे! भाभी सोयी रहीं!

□

दूसरे दिन से उस पर कई-कई पाबंदियाँ लगा दी गयी थीं, लेकिन वह दिन में एक बार कोई न कोई मौका निकाल ही लेता था उधर जाने का; जिधर अवाम की अक्सरियत थी! 'अवाम को मुनज़्ज़म करो' बस एक ही

वाक्य उन दिनों उसके दिमाग में गूंजता था और लोगों को एकत्र करके
एक ही बात वह कहता था, 'साज़िश से बचिए, एकजुट होकर सामने आइए
लड़ाई का मुद्दा बन चुका है !'

शब्बू ख़ामोश रहता। अन्य लोग भी ख़ामोश रहते ! स्त्रियां
[मुनातीं, 'इ मुन्ने को देखो हो, शहीद बाबा से जूझने की बात करता है।'

उसने यह वाक्य सुन लिया था एक रोज़, और अपनी पुरानी गति
वह पुनः शुरू हो गया था, "शहीद बाबा से नहीं, ये जो ज़िंदा शहीद बा
हैं, मैं इनसे जूझने की बात कर रहा हूँ। हां, आप लोगों को अगर
उम्मीद हो कि शहीद बाबा कुछ बांझ औरतों से बच्चा पैदा करवा देंगे
दूसरी बात है ! लेकिन शब्बू चाचा सुन लीजिए आप भी, और आप स
लोग, कि यहां बस साल-दो साल ही उर्स लगेगा; उसके बाद हाफ़िज़
इसमें खेती करेंगे। और यह भी सुन लीजिए, कि हर जुमेरात को यहां आ
लोगों की बहू-बेटियां ही हबुआएंगी और इन हाफ़िज्जियों के साहबज़
लुक-छिपकर इनके उधड़े हुए जिस्मों को निहारेंगे······इससे ज़्यादा औ
कुछ मत कहवाइये मुझसे !"

"नहीं भाई, बात तो ठीक कह रहा है मुनुवा ! इसकी मुखालिफ़
होनी चाहिए !"

कुछेक स्वर ऐसे भी आते हैं और बैठक खत्म हो जाती है !

लेकिन आज का निर्णय ठोस है, उसने सोचा और सारी बातें फिर
एक बार दुहराने लगीं दिमाग़ में !

"क्या करना होगा इसके लिये ?"

आज सबसे अहम सवाल यही था। लोग शब्बू की कोठरी में बै
हुए थे और उसे घूर रहे थे !

"कल आप हल लेकर चलेंगे और उसे जोतेंगे ! बस ! इसके अला
[कुछ नहीं करना है !"

"वे लोग रोकेंगे तब ?"

"तब वही होगा जो होना चाहिए ! हम सभी लोग वहां तैना
रहेंगे ! वे लोग क्या हमसे ख्यादा होंगे ?"

"नहीं, हम लोग ज़्यादा हैं !"

नूरे के मझले लड़के फतेमोहम्मद ने तनकर कहा तो लोग मुस्क
उठे !

"हे देखो हो, फते मोहमदा भी बोल रहा है।"

किसी ने कहा तो लड़का झेंप गया। लेकिन उसने उसकी पीठ थपथपायी और उठ गया।

"थोड़ी देर रुक जाइए, बाहर बूंदें पड़ रही हैं, भीग जाइएगा।"

चलते-चलने नूरे की लड़की टहाना और शब्बू की बीवी ने लगभग एकसाथ उसे टोंका था, लेकिन दोनों का जवाब 'कोई बात नहीं' के रूप में बिलकुल संक्षेप में देकर वह बाहर आ गया था।

□

अचानक भुन्न से करके एक मच्छर ने उसकी कनपटी पर डंक मारा तो एक चांटा जड़कर उसने करवट बदल ली, लेकिन अज़ान की आवाज़ से लगा कि अब सोना ठीक नहीं है। नमाज़ियों के लिये भले ही यह कोई धार्मिक संकेत हो, पर उसके लिये तो लड़ाई का संकेत है।

वह उठ बैठा। बाहर बारिश बन्द हो गयी थी और कमरे में उमस थी। लेकिन सुबह की ठण्डी हवा से धीरे-धीरे वह बाहर की ओर सरक रही थी। उसके सिरहाने से माचिस उठायी और लालटेन जलाकर पढ़ने बैठ गया। 'आवाम को मुनज़्ज़म करो।' किताब खोलते ही यह वाक्य फिर उसके दिमाग़ से टकराया और वह मुस्करा उठा।

"मुन्ने।"

उसकी मुस्कान चटाक से टूट गयी और टुकड़े भी कोठरी में बिखर गये। वह आंगन में आ गया। वहां भैया खड़े थे।

"हम अब यह लफंगई बर्दाश्त नहीं कर सकते। तुम्हें आज यह घर छोड़ देना है। जाकर वहीं फकिराने में अपना डेरा डाल लो या उसी नूरे की लौंडिया के पास बस जाओ। लेकिन इस घर में अब तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।"

वे बोल रहे थे और अन्य लोग बुत की भांति खड़े। चुनिया सिसक रही थी।

"आप बड़े भाई हैं, आपको हक़ हैं कि आप मुझे तम्बीह करें, लेकिन इस घर में मेरा भी हक़ है और इसे आप नहीं छीन सकते।"

उसके उनींदे मुंह से उस वक़्त सिर्फ़ इतना ही निकला और वह तेज़ी के साथ बाहर निकल गया।

पीछे देर तक गालियों का फ़ौवारा चलता रहा, लेकिन वह रुका नहीं। सड़क पर उसकी प्रतीक्षा हो रही थी।

▣

सड़क के लिये सात कवितायें

■ वीरेन डंगवाल

इलाहाबाद की खुशरुबाग रोड, जी० टी० रोड, लूकर रोड, चैथम लाइन्स, बरेली की स्टेशन रोड और मनोहर नायक के लिये

एक

सड़क पैर रखना
कितनी गहरी दूरियों से जुड़ जाना है एकाएक
कितने सारे लोग   कितने   कितनी ध्वनियां, गति, देश
कितनी हवा

वाह   कितना   अपनापा
रबड़ के बूट पहनकर   जिन्होंने फैलाया था
सींकदार बुरुश से पिघलते हुए तारकोल को गिट्टियों पर
देखो, कहीं न कहीं बने होंगे उनके पैरों के निशान
या फावड़े का सांचा रोलरों के बावजूद
देखो, हर सड़क इसी तरह मिल जाती है हर सड़क से
इसी तरह एक होती ही जाती है दुनिया

दो

बेहद अकेली होती हैं कुछ सड़कें
जिनसे गुजरती हैं ज्यादातर सिर्फ खाकी हरी भारी गाड़ियाँ
भरी हुई धूप में
अकेला आदमी उन पर एक अपशकुन की तरह चलता है
भले ही वह सायकिल पर हो और पैडिल में हवा
के खिलाफ जोर मार रहा हो

कभी होती हुई शाम या हल्की बारिश में इन पर चलकर
देखो,
वे चमकती जायेंगी अपने साफ धुले कालेपन के साथ
पर खत्म नहीं होंगी
ये ही हैं वे सड़कें
जो जा पहुंचतीं हैं सीधी समुद्रों तक

तीन

सड़कें बोलती नहीं
जैसे लैम्प पोस्ट और बरगद भी नहीं बोलते
भले ही ऐसा लिखा हो ।
पिछले बरसों की अवसादपूर्ण कहानियों में
मगर सड़क छपती है
जैसे ही उस पर पड़ता है एक भरपूर पैर
एक साबुत आदमी के वजन के साथ
सड़क छाप लेती है—'छप्'

चार

कभी गौर करना
सबसे पहले पैर का पंजा कुछ तना हुआ
लपकता है सड़क की तरफ
छूने-छूने को ही होता है कि एड़ी बाजी मार ले जाती है
एड़ी के टिकते ही सड़क की त्वचा के जरा नीचे
एकदम से चीखते हैं कई महीन स्वर—जैसे हारमोनियम
की पसलियों से
उस बिन्दु से पहले दोनों दिशाओं में जाते हैं
फिर सिर्फ तुम्हारी दिशा में तुम्हारी अनवरत पदचाप के
खोखल में लौट कर विलुप्त हो जाते हैं
यह सब घटित होता चलता है
सतह के सिर्फ जरा सा नीचे

पांच

यहीं कहीं होंगे
हमारे उन दोस्तों के पैरों के स्पंदन भी
जो जब नहीं हैं
यहीं कहीं किसी न किसी चीज़ में मिलकर वे कुछ हो गये होंगे

मसलन, पत्तों तक छा गये होंगे
पेड़ की सबसे मोटी जड़ के रस में घुलकर
या रेल की धड़धड़ाहट के साथ यात्राओं पर निकल पड़े होंगे
जलयानों के भोंपू की आवाज के साथ
या शायद आहिस्ता से खिसका हो कोई जर्रा
सारे भूगोल को लेकिन कुछ न कुछ बदलता हुआ
वैसे
ये भी वे ही हैं
यों मेरे शब्दों के रास्ते भाषा में जाते हुये।

छः

कई रोज बारिश के बाद जैसे निकली हो धूप
वह भपक और सांस से भरपूर होती है
खुरदुरी सड़क
भैंस की जीभ जैसी
उसके मुंह में रोटी दो तो चोंच बने हाथ जैसा
लगता है
वैसी

सात

सड़कें
समय में सिर्फ आगे को जाती हैं,
आती वे सिर्फ पीछे से हैं

जहाँ तुम खड़े हो
वह महज एक जगह है   सड़क पर
जहाँ एक औरत को नंगा करके पीट रहे हैं सिपाही
इन्ही सड़कों से चलकर आते रहे हैं आततायी
इन्ही पर चलकर आयेंगे एक दिन
हमारे भी जन

दानिश जमाल सिद्दीकी की तीन कविताएं

वरसात में भीगकर/छोटी सी लड़की/चील

बरसात में भीगकर

वरसात में भीग कर
भागते चले आये हैं बच्चे
कीचड़ पर निशान छोड़ते ।

लापरवाही से
फेंक आये है बच्चे
किताबें कापियाँ और सिलेटें
पेड़ों के नीचे ।

पत्तों से बतिया कर
वर्षा कविता के दरवाजे पर
दस्त देती है
जहाँ सिलेटों पर
शब्द गायब होना सीख रहे हैं

किताबों की जिल्द में
बुढ्ढा पहाड़ा खाँस रहा है
और मास्टर की कइनी
बंसवारी में शामिल हो गयी है।

घुटना भर पानी में
घुसकर
बच्चे खेल रहे है

मछलीऽ मछलीऽ कितना पानी
घोग्घो रानीऽऽ घोग्घोऽऽ रानी।

छोटी सी लड़की

बन्दर कैसे नाचता है
छोटी सी लड़की बताती है।

कुत्ता कैसे भोंकता है
छोटी सी लड़की बताती है।

बिल्ली की तरह गुर्रा कर
छोटी सी लड़की बताती है

छोटी सी लड़की बताती है
बिल्ली
दिल्ली में रहती है।

इतना सब बताकर
छोटी सी लड़की मुस्कुराती है
आखिर मुस्कुराती क्यों है भला

बिल्ली का मुहावरा
जानती है क्या
छोटी सी लड़की ।

चील

चील
एण्टीना पर बैठकर
चूहा खा रही है

दूरदर्शन पर
श्रीमती 'क' बताती है—
देश के किन हिस्सों में
कितनी प्रगति हुई है ।
कविता के अन्त में
वे कहती हैं—जय हिन्द ।

अवधेश कुमार की तीन कविताएं

जूता/मिट्टी की गेंद/इस वार भी पहाड़ पर

जूता

वह जूता बारिश में भीग रहा था
एक छोटे-से किले की तरह
उसमें किसी पैर का दखल नहीं था ।

वह जूता स्वतंत्र था
और खुश था, वह किसी पैर का गुलाम नहीं था ।

जूते की खुशी महक बन कर
उसके दिल के भीतर से उठ रही थी
और जंगल की हवा में घुल रही थी ।

यह पता लगाना कतई ज़रूरी नहीं
था कि वह किसका जूता था
लेकिन उसे देखकर उसे बनाने वाले
का एक हल्का-सा ख़्याल ज़रूर आता था ।

बारिश शायद उसी को भिगोने के लिए
पूरे जंगल पर मूसलाधार बरस रही थी
और पेड़ उसे अपने कंधों
पर झेल रहे थे ।

बारिश कहीं न कहीं
उस जूते के विरुद्ध थी
शायद जूता इस बात को जानता था
और मुस्कुराते हुए इत्मीनान से
भीग रहा था ।

उसके भीतर बदले की या शायद
किसी तरह की कोई भावना नहीं थी ।

जूता वहां पर निश्चल पड़ा भीग रहा था
मगर वह पत्थर की तरह मृत नहीं था
उसका आदमी के पैर की तरह
एक ठोस और मांसल अतीत था ।
आदमी के पैर के पसीने से कई बार
उसका दम घुटने-घुटने का हुआ
मगर उसने कभी उस पैर का विरोध
नहीं किया और कठिन से कठिन
परिस्थितियों में और ख़राब से ख़राब

वक्त में वह उस पैर को
इधर उधर ले जाता रहा ।
वह पैर के माध्यम से उस आदमी को
पूरी तरह जान गया था
और उसे उसमें एक निष्कपट सहानुभूति थी ।

वर्षा और हवा के थपेड़ों की मार से
जूते की दीवारें हौले से हिलती थीं
और उसका मुंह अजब तरह से
चमकने लगता था । उसे कोई दुख नहीं था ।

उसकी स्मृति उस पैर के साथ गायब हो चुकी थी
उसका साथी दूसरा जूता भी किसी अजाने क्षण
किसी अंधेरे में उसका साथ छोड़ गया था ।

वे दोनों किसी बैल की जोड़ी की तरह थे
जो उस आदमी को
अपनी पूरी आत्मा के साथ ढोते थे ।

जूते का ज़रूर कोई सपना होगा
जो कि सुदूर दमकते सूरज को नहीं ही मालूम था
जंगल के भीतर रहने के कारण
शायद वह पेड़ की तरह उगना चाहता होगा ।

जंगल का सबसे ऊंचा और मज़बूत पेड़
बनने की उसकी लालसा
ज़रूर बारिश की लय के साथ बढ़ रही होगी ।

कुछ दिन बाद जब बारिश रुक जाएगी ।
और धूप निकल आएगी तब शायद
कोई पक्षी या छोटा कीड़ा उसे अपना घर बना ले ।
खरगोश के लिए तो वह बहुत तंग और छोटा रहेगा ।

वह जूता जंगल में उस जगह
अपने सपने के साथ
जंगल का हिस्सा बनता रहा
उसने पाया कि वह धूप की आँखों में थी
चुभता है और समय उनसे बचता
हुआ गुजर रहा है ।
इतने सालों तक इतनी लम्बी यात्रा करने के
बाद वह जंगल के इस कोने में
अपने चमड़े के सपने को जूते का आकार
देने की कोशिश कर रहा है
और वह यह काम बहुत चुपचाप कर रहा है ।

कुछ दिन बाद एक बार फिर बारिश हुई
उसने उस चमड़े के किले की दीवारों को
पूरी तरह से ध्वस्त कर दिया
और इस तरह जूते के आकार का
एक काला और चमकदार सपना फड़फड़ाता हुआ
जंगल की पसलियों में धीरे-धीरे गायब होने लगा ।

मिट्टी की गेंद

मैं एक मिट्टी की गेंद हूँ
घास में लिपटी
गीली मिट्टी की गेंद ।

धूप के बहुत पास
और हवा में उड़ता हुआ
मैं इस गेंद के भीतर से
हाड़-मास का एक वृक्ष उगाऊंगा
उसके भीतर से एक चिड़िया
और उसके भीतर से एक आसमान

एक मिट्टी की गेंद के सपने
का साहस-एक आसमान।

अपने भीतर की गर्मी से फूटती हुई
इस गेंद के भीतर
एक दूसरी मिट्टी की देह खड़ी है
मिट्टी की गंध से सराबोर।

भले ही उसके खब्दकोश में
वसंत न हो
घास ही काफी
धूप के आसपास।
क्योंकि उसके होने की विश्वसनीयता से
आसमान में एक इत्मीनान भर जाता है।

पीड़ा की सबसे छोटी उंगली पर
थिरकती उस मट्टी की गेंद की
आत्मा का उजाला
हाथ की तरह उठा हुआ आसमान में
अपने होने को खंगालता हुआ
सभी संभव दिशाओं और कालों में
मिट्टी की गंध से सराबोर
वसन्त की निर्जनता में
पैदा करता हुका घास की नर्मी
और गरमाहट।

उस उछलती लुढ़कती कांपती
टूटती और गार-बार वनती
गीली मिट्टी की गेंद की तरह
घास के पंखों पर उड़ता

मैं किलकता और सिसकता हुँ
दूर, दूर, सुदूर तक ।

पास
और पास
और बहुत पास इस धूप के ।

इस बार भी पहाड़ पर

पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पर
कतार बांध कर खड़े हैं पेड़
सिपाहियों की तरह ।

ने अभी एकसाथ मिलकर
बिगुल बजाएंगे और
नए मौसम के आने की सूचना देंगे ।

एक नशा उनके पैरों के रास्ते
चढ़ना शुरु होगा
और उनके सिर में पहुंच कर
गुदगुदी मचाने लगेगा ।

पहाड़ी आलू गदराएंगे
रहस्यमय वनस्पतियां उगेंगी
और पेड़ों का कद ऊंचा उठ जाएगा ।

सोने के वर्क की तरह
पहाड़ पर चढ़ेगी धूप
चांदी के वर्क की तरह चांदनी ।

बहुत कुछ घटित होगा पहाड़ पर
इस बार
सब जानते हैं ।

सब जानते हैं कि क्या कुछ
घटित होगा
इस बार भी पहाड़ पर ।

खासकर उन पेड़ों के साथ ।

घना अंधेरा, मुर्गे का इन्तजार और वे

■ प्रकाश कान्त

उन्होंने मुझ से कहा, 'देखो, कितना अंधेरा है।'

मैंने इधर-उधर देखकर सहमति जाहिर की, "हाँ, अंधेरा तो है ?

वे थोड़े से नाराज जैसे हुए, नहीं सिर्फ अंधेरा नहीं है, बल्कि, बहुत घना अंधेरा है।'

"जी हां, घनेरा अंधेरा है।'—मैंने फिर सहमति व्यक्त की। क्योंकि आम तौर पर मैं उन लोगों में से हूँ, जिन्हें किसी भी चीज के होने या न होने में असहमत होने की जरूरत नहीं पड़ती। साथ ही, जिन्हें किसी भी चीज को स्वीकार करने में कभी कोई परेशानी नहीं होती। सों, मैंने मान लिया कि अंधेरा है। और बहुत घना अंधेरा है। अब चेहरे पर थोड़ी-सी परेशानी उगने लगी, 'अंधेरे का घनापन देखो लगातार बढ़ता जा रहा है।'

'हां, बढ़ता तो जा रहा है।'— मैं ठंडेपन की हद तक सहज था।

'एँ !' उनकी परेशान मुद्रा अब अचानक नाराजगी में तब्दील हो गयी, 'तुम्हें अंधेरे के इतने घनेपन से कोई तकलीफ, कोई शिकायत नहीं ?' उनका स्वर कुछ इस तरह का था, जैसे उस अंधेरे के लिए मैं ही जिम्मेदार हूं। या कि वह अंधेरा मेरे ही किसी षड़यंत्र का परिणाम है।' एकाध पल मैंने उस अंधेरे के लिए अपने ज़िम्मेदार होने को टटोला। लगा कि मैं अकेला तो कम-से-कम उसके लिए बिलकुल भी जिम्मेदार नहीं। इसीलिए, मुझे खुद को अपराधी महसूस करने की कतई जरूरत नहीं। थोड़ी-सी हिम्मत महसूस हुई।

'अजीब आदमी हो तुम ? इतना घना अंधेरा है। चारों तरफ सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा है। और तुम्हें इससे कोई तकलीफ, कोई शिकायत नही है।'—उनका गुस्सा जैसे उफान पर आ गया। लगा कि वे अगले ही पल शायद घूँसा उठाकर मेरे जबड़े पर जड़ देंगे। मैं अपने आप में दुबक गया। और अपने चारों ओर नजर दौड़ा कर उस अंधेरे को देखने की कोशिश की जिसकी वे बात कर रहे थे।

'देखो, एक बार अच्छी तरह देखो। देखो कि कितना अंधेरा है। सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा है। क्या तुम्हें कुछ दिखायी दे रहा है?' उन्होंने एक जादूगर की तरह पूछा, जो खाली डिब्बे को दिखाकर पूछे कि उसमें क्या है और बाद में उस डिब्बे पर छड़ी घुमा कर उसमें से केले या संतरे निकाल कर दिखा दे।

मैंने देखा। और मुझे बहुत कुछ दिखा। उनके चमचमाते जूते। इम्पोर्टेड कपड़े का सूट। कलाई पर चमचमाती घड़ी। और हीरे-जड़ी सोने की अंगूठी।

'बताओ, दिख रहा है कुछ?—' उन्होंने फिर से पूछा। अब मुझे लगा कि उन्होंने सम्मोहन जैसा कुछ कर दिया है। और दूसरा कुछ भी दिखाई देना बन्द हो गया है। वे चीजें भी गायब हो गयी हैं, जो अभी-अभी तक दिखाई दे रही थीं।

'कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा न!' उनका स्वर थोड़ा सा आत्मीय था। मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया।

'हाँ, अब तुम ठीक हो। पहली जरूरी शर्त ही यह है कि अंधेरे को देखा और महसूस किया जाये।'—उन्होंने मेरी आँखों में सीधे आँखें डालकर पूछा, 'क्या तुम इस अंधेरे को महसूस कर रहे हो?'

वे अब मेरे लिए धीरे-धीरे पूरी तरह किसी जादूगर की तरह होते जा रहे थे। सिर पर लम्बा सा टोप, बदन पर काला चोंगा, हाथ में बड़ी सी छड़ी, सम्मोहित करवा सकने वाली लम्बी लम्बी अंगुलियां! एक सफल जादूगर। उनके इशारे पर मैंने अंधेरा महसूस किया।

'हुआ अंधेरा महसूस?'—उन्होंने फिर पूछा। मैंने आज्ञाकारी बच्चे की तरह सहमति में सिर हिला दिया। उनके चेहरे पर सन्तुष्टि तैर आयी। मेरी ओर किसी त्राता या मसीहा की तरह देखा।

'हां, अब तुम एकदम ठीक हो। तुमने अंधेरा देख भी लिया है, और महसूस भी कर लिया है। अब यह बताओ कि तुम इस अंधेरे के बारे में क्या सोचते-समझते हो?—उन्होंने पूछा। मैं पशोपेश में पड़ गया। क्योंकि मुझे अपने बारे में इतना अच्छी तरह से मालूम था कि आम तौर पर मेरे पास किसी भी तरह के प्रश्नों के उत्तर नहीं होते। एक निहायत ही उत्तर विहीन व्यक्ति! कभी कभी तो डर भी लगता है कि कोई अचानक मुझ से मेरे बाप का नाम पूछ बैठे तो बता पाऊँगा भी या नहीं! संभव है, शायद एकदम नहीं बता पाऊँ। जब अपने बाप के नाम के साथ यह बात

हो तो, फिर किसी और चीज के बारे में, पूछे गये प्रश्नों के बारे में, तो सोचा भी नहीं जा सकता। ऐसे में, वे मुझ से अंधेरे के खिलाफ सोचने-समझने के बारे में तलाश कर रहे थे। एक तरह की मुसीबत ही थी। आखिर, सोचने-समझने से मुझ जैसे मामूली आदमी का क्या लेना-देना ! खासकर, इस तरह की तमाम छोटी-बड़ी चीजों के बारे में सोचने-समझने का ठेका जब दूसरों ने ले रखा है ? और फिर सोचने-समझने के लिए जिस दिमाग की जरूरत हुआ करती है, वह मैंने बहुत पहले बेच दिया था।

उन्होंने दुबारा मेरी ओर देखा। उनकी आँखों में प्रश्न की बुलः तनी हुई थी। मैंने लगभग गिड़गिड़ाते हुए अपने पास दिमाग न होने, उसे बेच आने की बात कही। कह चुकने के बाद मैंने अपना सिर शर्म के मारे झुका लिया। इस तरह की शर्म शायद पहली बार महसूस हो रही थी। उन्होंने मेरी ओर देखा। उनकी मुद्रा तथागत की तरह थी। उनकी दृष्टि में अभय, आश्वासन और करुणा सभी कुछ था। मैं कृतार्थ एवं आश्वस्त हुआ। विनीत भाव से उनके सामने झुक गया।

कोई बात नहीं। अगर तुम्हारे पास दिमाग नहीं है-तुम उसे बेच चुके हो, तो इसमें परेशान होने जैसा भला क्या है ! एक तरह से तुमने ठीक ही किया है। अब तुम ज्यादा अच्छी तरह से काम कर सकते हो। इस अंधेरे के खिलाफ भी। लेकिन, यह तो बताओ कि दिमाग बेचने के पहले क्या तुम इस अंधेरे के खिलाफ कुछ सोचते थे...अंधेरे के खिलाफ कुछ करना चाहते थे ?—वे पूछ रहे थे और मुझे लग रहा था कि मुझसे मेरे पिलले जन्म के बारे पूछा जा रहा हो। साथ ही, उनके दिव्य प्रभाव से मैं उस जन्म के बारे में थोड़ा-बहुत याद करने लगा हूँ। एक तरह का जादुई असर होने लगा था।

हाँ, ठीक है। तुम याद करने की कोशिश करो। तुम्हें याद आ सकता है। तुम्हें याद आ रहा है। और याद करो ? उनकी तांत्रिकों की जैसी आवाज मेरे आस पास तैरने लगी थी। मुझे धुंध में से कुद-कुछ याद आने लगा था।

"आया न याद ! 'किसी गुफा में से आती सी उनकी आवाज।' जी

हल्का-हल्का याद आ रहा है—कि दिमाग बेचने के पहले मैं अंधेरे और उसे खत्म करने के बारे में कुछ-कुछ सोचा करता था।"

'फिर ?'

फिर दिमाग बेच दिया। और इस जहमत से छुटकारा मिल गया।"

'खैर ?—उन्होंने फिर से आश्वस्त किया, 'अब तुम अंधेरे के बारे में सोचने लगे हो, यह बहुत अच्छी बात है। तुम्हें लगातार इसी तरह से सोचते रहना चाहिये ?—उन्होंने मेरा कंधा थपथपाया। फिर पूछा, 'अच्छा, तुम इतना तो जान गये हो कि अंधेरा है, और बहुत घना अंधेरा है। बताओ, अब हमें क्या करना चाहिये ?'

मैं फिर परेशान हो गया। समझ में नहीं आया क्या जवाब दूँ। अंधेरे के खिलाफ क्या-कुछ किया जाना चाहिये-मैं कुछ सोच नहीं पा रहा था। आखिरकार मिचमिचाती आंखों से उनकी ओर देखा। उनका चेहरा किसी महापुरुष की तरह प्रभामण्डल युक्त दिखाई दिया। 'तुम नहीं जानते तो चलो मैं ही बताता हूँ। उनके होठों पर तत्व ज्ञानी मुस्कुराहट तैर रही थी,' सुनो, हमें इस अंधेरे के खिलाफ एक सूरज का इन्तजाम करना है। चाहे जैसे हो, चाहे जहाँ से मिले। अटाले की दुकान से, ब्लेक में, तस्करी से, चोरी से ! हर हाल में हमें एक सूरज का इन्तजाम करना है ?

जी, लेकिन क्या दिये, मोमबत्ती या टार्च वगैरा से काम नहीं चलेगा ?"—मैंने पहली बार अपनी चोंच खोली। उन्होंने बहुत घृणा के साथ मुझे देखा। मुझे घृणित होने का एहसास हुआ ?

'देखो।'—उनका स्वर नाराजगी भरा था, 'तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि तुम अस्थायी सुधारों में भरोसा करते हो ! यह गलत है। दीये, मोमबत्ती या टार्च से कुछ नहीं होने वाला। ये सब एक किस्म की चालाकियां हैं। इससे अंधेरा हमेशा के लिए खत्म नहीं होता। बल्कि, उसकी उम्र और लम्बी हो जाती है। तुम ठीक तरह से सोचो, अंधेरे को हमेशा के लिए उखाड़ फेंकने का एक ही रास्ता है—एक पूरे सूरज की व्यवस्था करना !"

"लेकिन, हम सूरज को कैसे ला सकते हैं ?"—मैं गिड़गिड़ाया। तुममें आत्म विश्वास की कमी है, तुम्हें भीतर विश्वास पैदा करना चाहिये। हम सूरज ला सकते हैं। "उन्होंने नसीहत दी, भरोसा दिलवाया। लेकिन, मैं भरोसा नहीं कर पा रहा था। बाजार में शकर, घासलेट जैसी मामूली चीजें तो मिल नहीं रहीं हैं। भला सूरज जैसी चीज कैसे मिल सकेगी ! और फिर वे ब्लेक तक में खरीदने की कह रहे हैं। ब्लेक में तो और भी महँगी मिलेगी। इतना पैसा कहाँ, कैसे आयेगा ! फिर लगा कि उन्होंने पैसों

का इन्तजाम शायद कर रखा है। वरना, आत्म-विश्वास के साथ कैसे कहते!

'बोलो, क्या ख्याल है ?'—उन्होंने पूछा।

'जी, लेकिन सूरज मिलेगा कहाँ ?' पूछने की हिम्मत आखिरकार कर ही डाली।

'इसकी फिक्र तुम मत करो। मैंने इस मामले में पुख्ता खोजबीन कर रखी है। सेठ धरमदास के पास एक-दो सूरज हैं। वैसे, वे बेचने को तैयार हैं नहीं। उन्हें डर था कि सूरज बेचने से उनका कोई अनिष्ट हो सकता है। लेकिन, अगर अच्छा भाव मिलता हो तो वे सूरज बेच सकते हैं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है।'

'अगर उन्होंने देने से इन्कार किया तो ?'

'तो एक जगह और है, जहाँ सूरज मिल सकता है। शहर की सिविल लाइंस के कुछ बंगलों में सूरज होने का चला है। यह रहस्य बहुत मुश्किल से ही मुझे बताया गया है। जिन लोगों ने दिन-दहाड़े इस तरह सूरज गायब किये थे, उनकी सी. आर. में प्रशंसात्मक टिप्पणियां जोड़ी गयी हैं। सूरज चुराकर लाने वालों को प्रमोशन्स मिले हैं। कुछ लोग विदेश यात्रा पर भेजे गये हैं। ये लोग भी सूरज बेचने को तैयार नहीं थे। बमुश्किल आठ गुना ज्यादा कीमत पर बेचने को राज़ी हो पाये हैं। वह भी, इस शर्त पर कि खरीद फरोख्त को बिल्कुल गुप्त रखा जायेगा। बात जरा-सी भी लीक नहीं होगी। वे लोग अपनी नौकरी पर कोई रिस्क लेना नहीं चाहते। वैसे सूरज की डिलेवरी गुप्त रूप से होगी। जो तारीख और समय निश्चित किये जायेंगे, उस पर पैसा लेकर नदी के किनारे वाले खण्डहर में जाना। वहाँ एक शख्स आकर पहले हमें बताया गया कोड बोलेगा। शिनाख्त हो जाने के बाद फिर वह पूरब तरफ़ के श्मशान में ले जायेगा। वहीं डिलेवरी होगी। समझ गये ?—उन्होंने पूछा। मुझे लगा कि वे हिन्दी फिल्मों का कोई दृश्य सुना रहे हैं। लेकिन, उनका चेहरा गंभीर था। उस गंभीरता को देखकर मुझे उनकी कही पूरी योजना पर विश्वास करना पड़ा।

'लेकिन, जब जहर तक मिलावटी और नकली मिल रहा हो, तब क्या आपको यकीन है कि हमें सूरज शुद्ध और साबुत मिल सकेगा ?'—मैंने जैसे आश्चर्यजनक ढंग से एक लम्बा और इम्पोर्टेड मुश्किल वाक्य बोलकर प्रश्न जैसी स्थिति बतायी। उन्होंने इम्पोर्टेड कपड़े की पेंट की जेब में हाथ डालकर अपनी गम्भीर मुद्रा को और ज्यादा गम्भीर बनाया। आसमान की

ओर देखते हुए आँखें छोटी-छोटी कीं और बोले, 'हाँ तुम्हारी यह आशंका सही हो सकती है कि सूरज हमें शुद्ध और साबुत मिलेगा या नहीं ? अगर शुद्ध और साबुत नहीं मिलता है तो वैसी हालत में हमें सूरज को अच्छी तरह धो-पोंछकर, जरूरी मरम्मत के बाद पॉलिश करवाना होगी। वैसे, याद रखो कि इस मामले में हमें ज्यादा शुद्धतावादी भी नहीं होना चाहिये। इस तरह की छोटी-मोटी बातें तो चलती रहती हैं। और फिर, असली मुद्दा सूरज नहीं, सूरज का भ्रम है। किसी आधे-पौने सूरज के नाम पर हम साबुत, शुद्ध, चमकदार सूरज का भ्रम पैदा कर सके, तो काफी है! इसके साथ ही एक और बात ध्यान रखना कि सूरज की व्यवस्था हो चुकने के बाद उस पर नियन्त्रण तो हमारा ही होगा। उसकी निरन्तर देख-रेख जरूरी है। अच्छा हो यह देख-रेख हम ही करें। ऐसे में, हम किसी को इतना मौका ही क्यों देंगे कि वह सूरज के पास पहुंचकर उसकी शुद्धता, सम्पूर्णता और असलियत का अता-पता लगा सके।''

'लेकिन यह तो .....'मैं अपनी नैतिक किस्म की आपत्ति प्रस्तुत करना चाह रहा था, पर उन्होंने बीच में ही रोक दिया,' देखो, 'तुम्हारा तरीका बहुत कुछ नैतिकतावादियों जैसा है। इस तरह का आचरण कई बार बहुत हानिकारक और घातक होता है। देश और समाज के हित में इस तरह की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। बड़े कार्यों में इस तरह की बातों को तो छोड़ना ही पड़ता है। और फिर, यह भी तो है कि अगर हम सूरज को मुक्त रहने देंगे, हर किसी को उस तक आने-जाने देंगे, हर किसी को उसकी जाँच-पड़ताल करने की अगर छूट देते रहेंगे, तो फिर, तय है कि सूरज का कभी भी अपहरण हो सकता है। या फिर उसमें तोड़-फोड़ हो सकती है। अन्धेरा लौट सकता है। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखो कि लोगों को अगर यह पता लग जाता है कि लाया गया सूरज साबुत और शुद्ध नहीं है, तो फिर न सिर्फ सूरज का भ्रम टूट जायेगा, बल्कि लोग सूरज या उसके भ्रम या उसकी सम्भावना को हमेशा के लिये निरस्त अथवा अस्वीकार करते हुए अन्धेरे को स्थायी रूप से स्वीकार कर सकते हैं। ऐसे में, तुम सोच लो कि हमारे लिये क्या बेहतर रहेगा ? सूरज को मुक्त सबको देखने-भालने के लिए उपलब्ध रखना, या फिर उस पर अनिवार्य नियन्त्रण बनाये रखना···। मैं सोचता हूँ कि तुम जो अन्धेरे को देख और महसूस कर रहे हो, पहली स्थिति को कतई बर्दाश्त नहीं करोगे। मैं ठीक कह रहा हूँ न ? उन्होंने मुझे सोचने का बिना वक्त दिये ही अपनी तरफ से

लगभग घोषणा कर दी। मुझे चुपचाप स्वीकार करना पड़ा।

'अब और कहो, कौन सी आपत्ति हो सकती है तुम्हें ? कहो-कहो सारी चीजों का खुलासा पहले ही कर लिया जाना ज्यादा अच्छा होता है।' वे सर्वज्ञ की तरह बोल रहे थे। मुझे लगा कि मेरे पास कुछ खास पूछने लायक नहीं रह गया है। फिर भी, एक छोटा सा सवाल आखिर कर ही लिया, 'सूरज खरीदने के लिए पैसों का इन्तजाम कहाँ से होगा ?"

'हाँ, अब तुमने सबसे महत्वपूर्ण और बुनियादी सवाल पूछा है। मैं खुद भी चाहता था कि तुम इसी तरह का कोई सवाल पूछो। बहरहाल, इसका जवाब यह होगा कि हमें उन तमाम लोगों से इसके लिए चन्दा लेना होगा, जो इस अन्धेरे के खिलाफ हैं। और उसे हमेशा के लिए उखाड़ फेंकना चाहते हैं। यह काम तुम्हें करना है। अभी इसी वक्त जाओ और शिव मन्दिर तथा सीमेंट फैक्ट्री के पीछे गन्दे नाले के आस-पास रहने वाले सभी लोगों को ले आओ।' उनके शब्दों ने मुझ पर आह्वान की तरह असर किया। मेरी नसों में एक खास तरह का जोश उफान लेने लगा।

बस्ती तक पहुँचने में मुझे ज्यादा वक्त नहीं लगा। उस अन्धेरे में गन्दगी में बिलबिलाने वाले नंगे, भूखे, हड्डी-हड्डी जिस्म वाले उन लोगों को इकट्ठा करने में भी कोई खास परेशानी नहीं हुई। ताज्जुब सिर्फ इस बात का था कि उन सभी लोगों की शक्ल-सूरत एक जैसी थी। किसी भी तरह का फर्क कर पाना या नाक-नक्श, रंग-रूप, कद-काठी के आधार पर उन्हें अलग-अलग बाँट पाना सम्भव नहीं था। अन्धेरे का इल्म हो चुकने के बाद पहली दफा इतनी सारी एक जैसी शक्ल-सूरतों को देख रहा था। देखकर, घबराहट की हद तक आश्चर्य हुआ। उनके नाम जानने चाहे। लेकिन, पता लगा कि उन लोगों के अपने कोई नाम नहीं हैं। माँ-बाप के दिये हुए जो नाम थे, वे सब के सब किसी कारखाने से निकलने वाले मलबे के नीचे दब-दवा गये या फिर नोच-खसोट लिये गये।

उन एक सी शक्ल-सूरत वाले और नाम विहीन लोगों से जब उस अन्धेरे और उसे उखाड़ फेंकने के बारे में जानना चाहा तो वे सब एक सेकंड में उस सबके लिए तैयार हो गये। और बहुत उत्साह के साथ नारे लगाने की मुद्रा में आ गये। विश्वास नहीं था—उनके इतनी जल्दी तैयार हो जाने का। मैंने जब उनसे अपने साथ चलने को कहा, तो वे सभी मुझसे आगे हो गये।

सबको लेकर उनके पास पहुँचा। अपनी सफलता पर एक तरह की खुशी ही हो रही थी। उन्होंने सबकी ओर देखा। मेरा कन्धा थपथपाया, 'गुड, तुममें नेतृत्व के गुण हैं। एनी वे, तुमने इन्हें काफी कुछ तो बता ही दिया होगा। मैं सिर्फ मुद्दे की बात बताना चाहता हूँ। ठीक है न?'

मैंने सहमति में गर्दन हिलायी। उन्होंने मंच की व्यवस्था करने को कहा। इधर-उधर भाग-दौड़ की गयी। लेकिन, मंच की व्यवस्था किसी भी तरह नहीं हो पायी। तब उन एक जैसी शक्ल-सूरत वालों में से आठ-दस शख्स छाँटे गये। उन्हें ही घुटनों और हथेली के बल झुकाया गया। दो-एक को उन पर खड़ा किया गया। इस तरह से मंच बनाकर उस पर उन्हें खड़ा कर दिया गया। वे अब वाकई मंच पर खड़े नजर आ रहे थे। मुझे और मेरे साथ आए उन सभी एक सी शक्ल-सूरत वालों को उनकी ओर देखने के लिये अपनी-अपनी गर्दनें ऊंची करनी पड़ीं। वे अब बोल रहे थे। उनका अंदाज किसी धर्मगुरु की तरह से आह्वान करने वाला था। बहुत देर तक बोलते रहे। सभी सुनते रहे। उन्होंने अंधेरे, उसकी वजहें, उसके परिणाम, अंधेरे को हमेशा के लिये खत्म कर सकने के उपाय और अन्त में एक ठीक-ठाक सूरज के इन्तजाम की जरूरत समझायी। सभी मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहे। प्रवचन बहुत देर तक चलता रहा। अंधेरे की बहुत भयावह तस्वीर खींचने के बाद अपनी बात उन्होंने बहुत तार्किक ढंग से एक सूरज की आवश्यकता पर खत्म की। दो-चार पल अपने सामने खड़े उन एक सी शक्ल-सूरत वालों को देखते रहने के बाद उन्होंने फिर कहा, "मेरे ख्याल से अब आप अंधेरे के बारे में अच्छी तरह समझ चुके हैं। मुझे विश्वास है कि आप सभी इस अंधेरे को हमेशा के लिये खत्म कर देने की सोचते होंगे। कृपया, वे लोग अपना हाथ उठायें, जो इस अंधेरे को हमेशा के लिये खत्म कर देना चाहते हैं। उठाइये हाथ।"

उनके कहते ही सैकड़ों हाथ पूरे उत्साह और उफनती उत्तेजना के साथ उठ गये। उन हाथों की हथेलियाँ खुली नहीं, बल्कि नारे लगाने की शक्ल में बंधी थीं। मैं खुद रोमांचित हो उठा था! उन्होंने फिर एक दृष्टि उन तमाम उठे हुये हाथों पर डाली। थोड़े से मुस्कुराये, "बहुत बढ़िया। मैं जानता था कि अंधेरे के खिलाफ इसी तरह सोचते होंगे। यह वाकई बहुत खुशी की बात है कि आप सभी इस अंधेरे को खत्म कर देना चाहते हैं। लेकिन, अच्छी तरह से सुन लीजिये कि अंधेरे को हमेशा-हमेशा के लिये खत्म करने के लिये हमें एक सम्पूर्ण सूरज की आवश्यकता है। सूरज से कम

किसी चीज से हमारा काम नहीं चल सकता। हमारा लक्ष्य एक संपूर्ण सूरज है। और सूरज आज आसानी से मिल नहीं रहा है-यह आप भी अच्छी तरह से जानते हैं। यहां तक कि ब्लैक तक में सूरज नहीं मिलता। लेकिन, आप बिल्कुल निराश न हों, मैंने सूरज का इन्तजाम कर लिया है। हालांकि, सूरज का इन्तजाम किस तरह से हो सका है—यह मैं इसलिये बताना नहीं चाहता कि वह सब आत्मप्रशंसा होगी। बहरहाल, आप तो सिर्फ इतना ध्यान रखिये कि अगर हम इस अंधेरे को हमेशा के लिए खत्म करना चाहते हैं तो फिर हमें त्याग करना होगा। बिना त्याग, बिना कुर्बानी के इस तरह के काम नहीं हो सकते। चूंकि, हमें इस अंधेरे को हमेशा के लिये खत्म करने के लिये सूरज की आवश्यकता है, सो सूरज लाने के लिये हमें पैसों की आवश्यकता होगी। आप लोग भी जानते हैं कि मरने के बाद ढाँकने को कफन, जलाने को लकड़ी भी बिना पैसे के नहीं मिलती, तो फिर भला सूरज कैसे मिल सकता है। वैसे इसे बहुत बड़ी बात समझिये कि पैसे देने के बाद सूरज मिल भी रहा है। वरना, आप पैसे हाथ में लिये-लिये दुकान दुकान पूरा बाजार घूम आते तब भी आप को सूरज नहीं मिलता। सो, हमें खुश होना चाहिये कि सूरज हमें कम से कम मिल तो रहा है। अब मैं चाहूँगा कि आप लोग चन्दा करके जल्दी से जल्दी पैसे इकट्ठे कर लीजिये। हमारे पास वक्त बिल्कुल नहीं है। देरी करने से हो सकता है कि फिर हम सूरज कभी नहीं प्राप्त कर सकें। अच्छी तरह से याद रख लीजिये कि अगर इस वार हम देरी कर देते हैं—या चूक जाते हैं तो शायद हमें सूरज कभी नहीं मिल पाये। तब हमें मजबूरन अंधेरे को हमेशा के लिये स्वीकार कर लेना पड़ेगा। सो, जल्दी-जल्दी पैसे निकालिये।

उन एक-सी शक्ल-सूरत वाले तमाम लोगों में अब थोड़ी-सी फुस-फुसाहट होने लगी है। उन्होंने कहा था कि वे जेब से पैसे निकालें। लेकिन उन लोगों के नंगे जिस्मों पर जब कपड़े नहीं थे, तब जेबें कहां से होतीं। बहुत देर तक उनमें फुसफुसाहट चलती रही, आखिर उनमें से एक ने मुझे अपने पास बुलाया और बताया कि उन लोगों के पास तो फूटी कौड़ी नहीं है, पैसे जैसी किसी चीज को देखे तो उन्हें मुद्दतें हो गई हैं। ऐसे में, चन्दा कैसे दिया जा सकता है। सुनने के बाद, मैंने उनके चेहरे देखे-निराशा की एक मोटी सी परत ने उन चेहरों को ढक रखा था। मैंने उन लोगों की बात उन तक पहुंचा दी। सुनकर वे थोड़े गम्भीर हुए। आसमान देखा। फिर किसी तत्वज्ञानी की तरह बोले, 'ठीक है, अगर आपके पास चन्दा करने

को पैसा नहीं है, तब भी आपको निराश नहीं होना चाहिये। हम अभी भी चन्दा कर सकते हैं।' कहने के बाद वे थोड़े से रुके। उन एक से दिखने वाले लोगों में उत्साह की हलचल मच गयी। वे समझ नहीं पा रहे थे कि पैसे होने के बावजूद भी चन्दा कैसे किया जा सकता है। चमत्कार की तरह लगने लगा था उन्हें। सब उनकी ओर भौचक्के होकर देख रहे थे।

उन सब को अपनी ओर उस तरह देखते, वे थोड़े से-मुस्कराये, "तुम लोगों को शायद मेरी बात का विश्वास नहीं हो रहा होगा। लेकिन, सच मानो मैं संभव बात ही कह रहा हूँ। तुम लोग अभी-अभी चंदा कर सकते हो। तुम्हें सिर्फ पुलिस स्टेशन के पास की ब्लड बैंक तक चलना होगा। वहाँ तुम अपना खून देकर पैसा प्राप्त कर सकते हो। और चन्दा हो सकता है।"

कहने के बाद उन्होंने किसी बहुत मुश्किल पहेली को बूझ लेने वाली या कोई महान दार्शनिक सत्य उद्घाटित करने वाली मुद्रा बनायी थी। उन सब ने पहले एक दूसरे की ओर देखा। फिर खुद की तरफ देखा-अपने हड्डी हड्डी जिस्म की ओर। फिर उनमें हल्की-हल्की खुसरपुसर हुई। और कुछ आवाजें उगीं, 'लेकिन, हमारे जिस्मों में खून तो है ही नहीं। मुद्दतें हुई सारी नसें सूखी पड़ी हैं।'

"हां, मैं जानता हूँ, और बतौर जानकारी के तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारे दिलों में थोड़ा-थोड़ा खून, 'स्पेयर' की तरह सुरक्षित पड़ा है। जिसकी तुम्हें जानकारी नहीं। इस खून को बेचकर हमारा काम चल सकता है," —उन्होंने कहा। उन लोगों के बीच फिर फुसफुसाहट होने लगी। वे सभी उनके द्वारा दिये गये उस दिव्य ज्ञान से अभिभूति थे। सभी के चेहरे पर उत्साह की एक मोटी-सी लहर दौड़ गई। सभी उत्तेजित हो उठे। 'जिन्दाबाद' जैसे कुछ नारे हवा में उछले।

"मेरे ख्याल से तुम सभी खून देने को तैयार हो?"—उन्होंने पूछा।

"हाँ-हाँ हम सब तैयार हैं।" —आवाजों ने आकाश कंपा दिया।

"लो ठीक है, आओ मेरे साथ।"—वे मंच से उछलकर नीचे उतरे और पुलिस स्टेशन की तरफ चलने लगे। हम सभी उनके पीछे हो गये। एक-सी शक्ल वाले लोग बार-बार नारे जैसा कुछ बोलते जा रहे थे। उनकी मुट्ठियाँ तनी हुई थीं। कपाल की नसें फड़फड़ाती हुई और खाली-खाली पेट के ऊपर जुड़े दोनों फेफड़ों में आती-जाती साँसे तेज थीं।

पुलिस थाने से होते हुए ब्लड बैंक तक पहुँचने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। पहुँचने पर उनके कहते ही सबने आनन-फानन क्यू लगा लिया था। खून दिया जाना शुरू हुआ। हर किसी के पैसे काउण्टर से लेने का काम मुझे सौंपा गया था।

इस सबमें ज्यादा वक्त नहीं लगा। खून दे चुकने के बाद वे सब निढाल से हो गये। उनकी गर्दनें लटक सी गयीं। सांसे तेज चलने लगीं। लेकिन, इसके बावजूद वे सन्तुष्ट थे।

खून देने का काम निपट चुकने के बाद उन्होंने उन सब को एक बार और सम्बोधित किया, "तुम लोगों ने सूरज को लाने के लिये सच्ची कुर्बानी की है। इस वक्त हम लोगों के पास इतना पैसा इकठ्ठा हो गया है कि हम अच्छे से अच्छा सूरज ला सकते हैं। हमें सूरज लाने और इस अंधेरे को खत्म करने से कोई भी नहीं रोक सकता। अब आप जल्दी ही देखेंगे कि हमारे चारों ओर सिर्फ उजाला ही उजाला है।

अपना सम्बोधन समाप्त करने के बाद वे मेरे पास आये। मेरे पास से सारे पैसे लेकर अपनी जेब में ठूँस लिये। अब तक उन एक से दिखने वाले मरे-मरे से जिस्मों में बहुत हल्के-हल्के उत्साह की एक महीन-सी लहर दौड़ गयी थी।

"आओ मेरे साथ। अब हम सूरज लायेंगे।" —उन्होंने तेज कदमों से चलते हुए सबसे कहा। वे बहुत तेज चल रहे थे। वे एक से दिखने वाले भी उनके पीछे उतने ही तेज चलने की कोशिश कर रहे थे। और इस कोशिश में लगभग हाँफ रहे थे। कपाल पर पसीना चलक आया था।

चलते-चलते वे राजपथ पर स्थित एक फाइव स्टार होटल के सामने रुके। उनको रुका देख, सभी को रुक जाना पड़ा। उन्होंने हम सबकी ओर दार्शनिक और त्राता की दृष्टि से देखा और फिर कहा—'देखो, यह सामने जो इमारत दिखाई दे रही है न, उसी में सूरज के सौदे के आखिरी कागजात तैयार होने वाले हैं। कागजात तैयार होने के बाद हमें सूरज मिल पाएगा। सो, मैं जाता हूँ। हो सका तो हाथोंहाथ सूरज लेकर आऊँगा। बस, गया और आया। तब तक तुम लोग यहीं बाहर मेरा इन्तजार करो।" —उन्होंने कहा। सभी ने सहमति में गर्दनें हिलाई। वे तेजी से फाइव स्टार होटल के अहाते से होते हुए होटल में घुसकर हम लोगों की आंखों से ओझल हो गये। हम लोग उस लम्बी, भीड़ भरी सड़क के फुटपाथ पर बैठ गये। उन

एक से दिखने वाले लोगों के चेहरों पर सूरज के आने के विश्वास से एक खास किस्म की चमक फूट रही थी।

उन्होंने थोड़ी-सी देर में सूरज लेकर आने को कहा था। लेकिन, अर्सा बीत गया, वे नहीं आये। हम लोगों ने भीतर घुसकर उन्हें तलाश करने की कोशिश करनी चाही, लेकिन राइफल धारी पहरेदार ने हमें मुख्य द्वार के भीतर एक कदम तक नहीं रखने दिया।

तब से हम लोग परेशान, उत्तेजित और नाराज बाहर सड़क पर बैठे सूरज लेकर उनके लौटने का इंतजार कर रहे हैं।

कहानी

मातमपुर्सी

■ जवाहर सिंह

श्रीवास्तव साहब का ख्याल है...और महज ख्याल ही नहीं; अब तो उन्हें इसका पक्का विश्वास भी हो चला है कि आदमी को आगे बढ़ाने में उसकी काबिलियत, योग्यता और परिश्रम का हाथ नहीं, अवसर का हाथ होता है। अवसर...माने मौका...अर्थात् ठीक अवसर को पहचानना और उनके अनुसार काम करना। इसी को कहते हैं, वक्त की नज़ाकत को पहचानना। उनके दोस्तों के बीच उनका यह तकिया-कलाम काफी लोकप्रिय है कि "हिट द आइरन व्हेन इट इज हाट" ...चोट तब मारो जब लोहा गर्म हो। लेकिन असली चीज होती है, लोहे की गर्मी को आंकने की योग्यता। यहीं आकर बहुत से लोग चूक जाते हैं।

श्रीवास्तव साहब को अपने पर गर्व है कि वह कभी नहीं चूके। हथौड़े की चोट तभी मारी, जब लोहा गर्म रहा। कितनी गर्मी पर चोट मारनी चाहिए, यह वह बखूबी जानते हैं...यही उनकी योग्यता है... उनके व्यक्तित्व की विशेषता है...और यही उनकी जिन्दगी का सबसे बड़ा राज भी। जो लोग इस राज को जानते हैं, उनकी नजर में श्रीवास्तव एक नंबर का मक्खनबाज है...चापलूस और मौकापरस्त है...वह अपने टुच्चे से स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक नीचे उतर सकता है ..कुछ भी कर सकता है।

लेकिन कहने वाले कुछ भी कहा करें, कुछ भी समझा करें, आज पूरे डिपार्टमेंट में तूती तो उन्हीं की बोलती है। अपनी कलम की नोंक से किसी को बना सकते हैं, किसी को मिटा सकते है...राई को पर्वत और पर्वत को राई...महज ग्यारह साल की नौकरी में आफिस सुपरिन्टेंडेन्ट से डायरेक्टर बन जाना कोई साधारण बात है क्या !

उनसे ईर्ष्या करने वाले इसे किस्मत का खेल कहें, चाहे भाग्य का चमत्कार, पर श्रीवास्तव साहब ने इसे कभी इस रूप में नहीं स्वीकारा। भाग्यवादी वह कतई नहीं हैं। उन्हें अपने पर भरोसा है। अपने पर भरोसा

का मतलब, अपनी बुद्धि पर भरोसा...वक्त की नजाकत पहचानकर...लोहे को गर्म देखकर उस पर सही ढंग से चोट करने का, तत्काल निर्णय लेने वाली योग्यता पर भरोसा।

अब शादी की बात ही ले लीजिए। नौकरी लग जाने के बाद भी वह चार साल तक अपनी शादी टालते रहे। माँ-बाप से लेकर रिश्तेदारों तक ने अपने-अपने ढंग से उन पर दबाव डाला। खूब दान-दहेज देने वाली पार्टियाँ भी उनके पास आयीं और एक से एक सुन्दर तथा पढ़ी-लिखी खानदानी लड़कियों के बाप भी आये। लेकिन वह सब को टका-सा जवाब देते चले गये। माँ-बाप को समझा दिया, "आप लोग घबराएँ नहीं, उचित अवसर आने पर मैं स्वयं ही अपनी शादी की बात पक्की कर लूंगा...ठीक मौके की तलाश में हूँ।"

और खुदा न खास्ते ऐसा ही एक सुनहला मौका उन्हें मिल भी गया। एक भूतपूर्व मन्त्री की भूतपूर्व दुश्चरित्र कन्या थी। पच्चीस-छब्बीस साल की होने के बावजूद विधिवत् शादी न हो पाने के कारण तथाकथित कुमारी थी। गत सात-आठ वर्षों से उसके प्रभावशाली पिता अपने सारे अर्जित प्रभावों का प्रयोग कर थक चुके थे, पर कन्या के पिछले रेकार्ड्स कुछ इतने खराब थे कि रिश्ते बनते-बनते बिगड़ जाते। दरअसल कन्या जब इण्टरमीडिएट की छात्रा थी, तभी उसे फिल्मी एक्ट्रेस बनने की धुन सवार हो गयी थी। उस समय मन्त्री जी भूतपूर्व नहीं बने थे। उनके दरबार में एक से एक रत्नों की भीड़ लगी रहती थी। उन्हीं में से एक रत्न के साथ मन्त्री जी की पुत्री चुपके से बम्बई भाग गयी थी। चार महिने तक न जाने किन-किन नायक-खलनायकों के साथ कहाँ-कहाँ शूटिंग करती रही थी। फिर पाँचवें महिने अनरिलीज्ड फिल्म की पूरी रीलें पेट में छुपाए बाप के बंगले में लौट आयी थी। स्थानीय अखबार वालों ने कुछ दिनों तक इस खबर को खूब उछाला। बालिका की तस्वीरें अखबारों के प्रथम पृष्ठ पर छपीं। लेकिन मन्त्री जी ने इसे अपनी छवि बिगाड़ने के उद्देश्य से विरोधी दलों द्वारा चलाये जा रहे सुनियोजित षड्यन्त्र कहकर इस पूरे काण्ड पर पर्दा डाल दिया था।

फिल्म सही-सलामत रिलीज हुई या अर्द्धनिर्मित ही खारिज कर दी गयी, यह तो कोई नहीं जान सका, पर लड़की को बदनाम होना था और वह जमकर हुई। यह भी मौके की ही बात थी कि मंत्री जी श्रीवास्तव साहब के स्वजातीय थे और उनके घर श्रीवास्तव साहब का आना-जाना भी पहले से था। कहने वाले तो यह भी कहते सुने गये हैं कि श्रीवास्तव को

नौकरी भी उन्हीं की वजह से मिली थी। खैर, सच्चाई जो भी हो, श्रीवास्तव साहब मंत्रीजी का हृदय से सम्मान करते थे और अपना गॉड-फादर मानते थे।

इसीलिए गॉड-फादर ने एक दिन जब उनसे अपनी पुत्री सावित्री का पाणिग्रहण कर लेने का प्रस्ताव किया, तब श्रीवास्तव साहब ने इसे गॉड-फादर की ब्लेसिंग समझकर सहर्ष स्वीकार कर लिया। गॉड-फादर ने बस इतना ही कहा, "बेटा रमन, तुमने तो वेद-शास्त्र नहीं पढ़े होंगे, पर मैंने इन सबका अध्ययन अपने जेल के दिनों में खूब किया है। शास्त्र में लिखा है कि गंगा का जल और औरत का शरीर कभी अपवित्र नहीं होता। मेरी बेटी सावित्री को झूठ-मूठ बदनाम किया गया, वह गंगा जल की तरह पावन और पवित्र है। उसे स्वीकार कर मुझे पुत्री-ऋण से मुक्त करो। सावित्री के पुण्य-प्रताप से तुम्हारा कैरियर भी बन जायगा। मरा हुआ हाथी भी हजार टके का होता है। मैं मंत्री न हूँ, फिर भी पार्टी में मेरा वजन है, तुम्हारे लिये बहुत कुछ कर सकता हूँ... ।"

इसके बाद श्रीवास्तव साहब ने सावित्री का उद्धार कर दिया था और सावित्री के पिता ने इनका उद्धार। डिपार्टमेन्ट द्वारा श्रीवास्तव साहब को तीन महीने के लिये जापान भेज दिया गया था—तकनीकी प्रशिक्षण के लिये और वहाँ से लौटे थे तो डिप्टी डायरेक्टर की कुर्सी पर बैठा दिया गया था। इसके बाद ऊपर वाली कुर्सी ज्वाएंट डायरेक्टर की थी और इसे हथियाने में श्रीवास्तव साहब ने अधिक देर नहीं लगायी थी। वक्त की नजाकत पहचानने में माहिर इनकी बुद्धि ने सही मौका देखकर गर्म लोहे पर हथौड़ा ठोंक दिया था। मुद्दई चुस्त, गवाह दुरुस्त... । इधर ज्वाएंट साहब को रिश्वत देने वाला तैयार और उधर रिश्वर लेते वक्त उन्हें रंगे हाथों पकड़ने वाला अधिकारी भी तैयार। गर्म लोहे पर एक करारी चोट और ज्वाएंट डायरेक्टर साहब चित्त। सस्पेंशन और इन्क्वायरी का समय आगे और आगे सरकता गया था और इस बीच श्रीवास्तव साहब ने छलांग लगाकर ज्वाएंट डायरेक्टर वाली कुर्सी को दबोच लिया था। इस काम में उन्हें महज दो साल का समय लगा था।

इसके बाद अपने से वरिष्ठ तीन-तीन अधिकारियों को पीछे ढकेलकर महज पाँच साल के अन्दर ही वह कैसे डायरेक्टर की कुर्सी पर पहुँच गये, यह आज भी पूरे विभाग के लिये रहस्य ही बना हुआ है।

जानकार लोग इसे रहस्य मानते हैं और गैर जानकार किस्मत का करिश्मा। लेकिन श्रीवास्तव साहब इन दोनों तर्कों को खारिज कर अपना

एक अलग लॉजिक देते हैं। कहते हैं, "भई, असल चीज होती है आइडिया... और उससे भी बड़ी चीज होती है उस आइडिया का ऐन मौके पर बिजली की कौंध की तरह दिमाग में कौंध जाना। इधर दिमाग में बिजली की तरह आइडिया कौंधा और उधर आगे की योजना तैयार। इसे ही कहते हैं वक्त की नजाकत को पहिचानना...गर्म लोहे का ताव देखकर चोट करना।"

□

और आज भी श्रीवास्तव साहब के दिमाग में एक ऐसा ही आइडिया कौंध गया है। नये जिले में स्थानान्तरित होकर आने के बाद से एक भी ऐसा मौका नहीं आया था कि वह अपने व्यक्तित्व का कोई चमत्कार दिखा सकें। बड़े सौभाग्य से आज एक सुअवसर हाथ लग गया था। इनके आफिस का एक ग्रेड फोर आज आफिस आते वक्त बस दुर्घटना का शिकार हो मर गया था। बारह बजे के करीब आफिस में इसकी खबर पहुँची थी। कर्मचारी संघ का सचिव जब शोक-सभा करने के लिये श्रीवास्तव साहब के पास अनुमति लेने गया, तब उन्होंने न केवल अनुमति ही दी, बल्कि यह सुझाव भी दिया कि कुछ लोगों को उस मृत पीअन के घर जाकर उसके कफन-दफन के क्रिया-कर्म में भी सहयोग देना चाहिये।

शोक-सभा के बाद एक बजे से कार्यालय बन्द हो गया। कर्मचारी चले गये। श्रीवास्तव साहब भी अपने बंगले पर जाने के लिये चेम्बर से निकलकर बाहर आ गये। ड्राइवर ने उनके लिये कार का दरवाजा खोला और ठीक इसी समय वह आइडिया उनके दिमाग में बिजली की तरह कौंध गया था। इधर ड्राइवर दरवाजा खोले खड़ा-खड़ा उनकी ओर देख रहा था और उधर श्रीवास्तव साहब इस आइडिया की कौंध से अभिभूत आगे की योजना के प्रारूप-निर्माण में खो-से गये थे। योजना का प्रारूप उनके उर्वर मस्तिष्क में लगभग तैयार हो गया। फिनिशिंग टच वह रास्ते में दे लेंगे, ऐसा सोचकर वह कार में बैठ गये। चलते-चलते ही उन्होंने ड्राइवर से पूछा, "भोलाराम पीअन का धर तो तुम जानते होगे... ?"

"जी हां सर, मै भी उधर ही रहता हूं।" ड्राइवर अपने साहब की आत्मीयता से भीगता हुआ मृत भोलाराम के धर परिवार के संबंध में धीरे-धीरे बताता रहा। साहब सुनते रहे, पर उनका दिमाग अब भी अपनी योजना में उलझा था।

बंगले के लान में गाड़ी पहुंचने तक पूरी योजना उनके दिमाग में

तैयार हो चुकी थी। वह भीतर ही भीतर बेहद प्रसन्न हो रहे थे। "...इसको कहते हैं ग्राइडिया...तत्काल बुद्धि का चमत्कार।" उन्होंने मन ही मन जैसे अपने आप को ही शाबाशी देते हुए सोचा, कल पूरे आफिस में क्या, पूरे शहर में मेरी चर्चा चलेगी। लोग कहेंगे, आफिसर हो तो श्रीवास्तव साहब जैसा। अपने आफिस के एक साधारण पीअन की मृत्यु की खबर सुनकर मातमतर्सी के लिए पत्नी के साथ पैदल उसके घर तक गये। यक-ब-यक मैं अपने सारे मातहतों की नजर में पूज्य और महान बन जाऊँगा। आफिसर्स सर्किल में भी मेरी धाक जम जाएगी। भई, डेमोक्रेसी और समाजवाद के ये ही सारे तो लटके हैं...भीतर से चाहे जो हो, बाहर से अपने को आम आदमी...गरीब आदमी के स्तर पर लाकर दिखाओ...उनके साथ समानता और भाई चारे के व्यवहार का नाटक करो। ये बड़े-बड़े नेता और मंत्री इसीलिऐ तो कभी-कभी इस तरह के नाटक करते हैं। ...तो अपन भी उनसे पीछे क्यों रहें। बेहतर तो होता कि किसी प्रेस रिपोर्टर को भी अपने साथ ले लेते...लेकिन खैर, कल आफिस से ही टाइप कराकर इसकी पूरी रिपोर्ट अखबारों में भेजवा दी जाएगी...।

यही सब सोचते-सोचते जब वह कार से बाहर निकले तब उनके होठों पर एक अजीब सी तृप्ति और सफलता की मुस्कान खेल रही थी। होठों से हल्के-हल्के सीटी बजाते ही वह बरामदे की सीढ़ियां पारकर ड्राइंग रूम में आ गये। काफी दिनों के बाद आज वह इतने अच्छे मूड में घर लौटे थे। अमूमन आफिस से लौटकर बंगले में कदम रखते ही उनकी चीख-चिल्लाहट, डाँट-डपट और हल्की-फुल्की गालियों से पूरा बंगला थर्रा उठता था। नौकर-चपरासी, माली, दरबान- सब संत्रस्त, डरे-सहमे भाग-दौड़ करने लगते थे। यहां तक कि उनकी पत्नी भी कुछ देर के लिए अव्यवस्थित-सी हो जाती थीं।

लेकिन आज ऐसा कुछ नहीं हुआ ड्राइंग रूम में किसी को न देखकर वे गलियारा पारकर बेडरूम में चले गये। सावित्री पलंग पर लेटी किसी रंगीन फिलमी पत्रिका के पन्ने उलट रही थी।

उन्हें कमरे में आये देखकर वह उठ बैठी। बोली, "आज इतनी जल्दी कैसे ?" फिर एक क्षण रुककर उनकी ओर ध्यान से देखती बोली, "आज तो बड़े खुश नजर आ रहे हो...क्या फिर कोई प्रमोशन हो गया...या पिक्चर का टिकट लेकर आये हो...?"

"बस, जल्दी तैयार हो जाओ फटाफट... समय नहीं है। बहुत

जरूरी काम से एक जगह चलना है।" वे खड़े-खड़े ही बोले।

"पहले बोलो न कहां चलना है...?" सावित्री छोटी बच्ची की तरह ठुनकती आवाज में लाड़ से बोली।

'वह तो बाद में बतलाऊँगा... पहले तुम जल्दी तैयार हो लो।' उसकी बांह पकड़ पलंग से उठाते हुए श्रीवास्तव साहब ने मुस्कराते हुए प्यार से कहा, "लेकिन हां, ज्यादा कुछ मेक-अप वगैरह न करना...और भड़कीली-चटकीली साड़ी भी न पहनना। किसी की बर्थ–डे या मैरिज पार्टी में नहीं मातमपुर्सी के लिए जाना है।"

"हाय राम... किसकी मातमपुर्सी...कौन मर गया...?" सावित्री के स्वर में घबराहट थी।

"अरे, ऐसी कोई बात नहीं जो इतनी परेशान हो रही हो।" श्रीवास्वत साहब किंचित हास्य के साथ बोले, "कोई अपना सगा-रिश्तेदार या वी. आई. पी. नहीं मरा है...वो अपने आफिस का एक पीअन एक्सीडेंट में मर गया है।"

"तो तुम अब पीअन-चपरासी के घर मातमपुर्सी करने जाओगे...?" सावित्री ने राहत की एक लंबी साँस छोड़कर व्यंगात्मक लहजे में कहा।

"इसमें हर्ज क्या है...? आखिर वह अपने विभाग का कर्मचारी था!" फिर थोड़ा सहज होकर बोले, "अरे भाई, इसमें अपना क्या लगता है, थोड़ी देर के लिए वहां चले जाना है···।"

"तो तुम्हीं हो आओ, मुझे नहीं जाना किसी भंगी-पीअग के घर।" सावित्री थोड़ा खीजे स्वर में बोली।

"मेम साब, थोड़ा जमाने की हवा पहचानिए···हवा!" श्रीवास्तव साहब पूरी गंभीरता से बोले, "अपनी सरकार की नीति बदल चुकी है, अब न यहां कोई छोटा है, न कोई बड़ा—पूरा समाजवाद है। पेपर तो रोज पढ़ती हो, कुछ समझती भी हो कि जमाना कहां चला गया। एक हरिजन कहीं मारा जाता है, तो प्रधानमंत्री तक हेलीकाप्टर उड़ाकर मातमपुर्सी करने पहुंच जाती हैं। उधर पार्लियामेन्ट में तहलका मच जाता है। तुम तो राजनीतिज्ञ की बेटी हो, कुछ तो राजनीति समझा करो!"

'राजनीतिज्ञ की बेटी' वाला फार्मूला काम कर गया। सावित्री अपने खानदानी पेशे की तौहीन बर्दाश्त करने के लिए तैयार न थी। उसे लगा, इसमें जरूर कोई गहरी राजनीति है और इस राजनीति को अभी वह भले ही ठीक से समझ नहीं पा रही है, पर मातमपुर्सी के लिए न जाकर वह

अपनी राजनीतिक अज्ञानता का पर्दाफाश नहीं होने देगी। उसका चढ़ा हुआ पारा तुरंत नीचे उतर आया।

"ठीक है चलो, मैं तुरन्त तैयार हो लेती हूं।" वह सहज विनम्र भाव से बोली और वार्डरोब खोलकर अवसर के अनुकूल कपड़े छांटने लगीं। "सुनो, ऐसे अवसरों पर तो काले कपड़े पहने जाते हैं न...?" वार्डरोब में हैंगरों में टंगी दर्जनों साड़ियों पर दृष्टि स्थिर किए हुए ही वह पति से बोली, "काले रंग की साड़ी–ब्लाउज तो है मेरे पास, पर इस रंग से मैच करता कोई सैंडिल-चप्पल नहीं है। एक है भी तो बहुत घिस गया है। फिर क्या किया जाय...?"

"अरे भई, चलेगा, कोई सी चम्पल पहन लो...कौन सी मैरिज-पार्टी में जाना है...।"

"तुम भी हद करते हो...।" सावित्री अनखाकर बोली, "वहाँ कितने लोग होंगे। किसी की नजर पड़ गयी तो क्या सोचेगा। कहेगा, इतने बड़े आफिसर की बीवी और कपड़े पहनने का सलीका नहीं।"

"तो फिर क्या करोगी...?" श्रीवास्तव साहब थोड़ा खीज कर बोले। "ऐसा करो, या तो तुम पाँच-सात मिनट यहीं रुके रहो तब तक मैं ड्राइवर के साथ बाजार जाकर चप्पल खरीद लाती हूँ या फिर बाजार से होकर ही हम लोग चलें। बेहतर होगा कि तुम तब तक यहीं बैठकर एक कप चाय पिओ, मैं नौकर से चाय के लिए बोल देती हूँ। पाँच-दस मिनट ही तो लगेंगे।"

"ठीक है, जाओ, लेकिन अधिक देर मत करना, वैसे ही काफी देर हो गयी है। और हाँ, एक बात और...साला अभी दिमाग में आया। किसी एक अच्छे फोटोग्राफर को अपने साथ ही कार पर बैठाए आना, पैसे चाहे जो मांगे, दे दिया जाएगा। और सुनो, फूल की दो मालाएँ भी ले लेना, हम दोनों उसकी शव पर रखेंगे। उसके बच्चों के लिए कुछ सस्ते वाले टाफी-बिस्कुट्स आदि भी ले लेना।...साला इसमें भी सौ रुपये का चूना लग ही गया...लेकिन खैर, कोई बात नहीं।" श्रीवास्तव साहब पलंग पर तकिए की टेक लगा आराम से बैठते हुए बोले और जूते का तसमा खोलने लगे।

बाजार से लौटकर सावित्री ने फिर से हल्का मेक-अप किया, काले रंग की साड़ी-ब्लाउज और चप्पल पहने और हाथ में काले रंग का वैनिटी बेग लेकर तैयार हो गयी। श्रीवास्तव साहब काले कोट-पैंट और टाई में कसे पहले ही से तैयार बैठे थे।

भोलाराम के घर से कुछ दूर पर ही श्रीवास्तव साहब ने गाड़ी रुकवा दी। फोटोग्राफ़र को साथ ले यह काफिला पैदल ही भोलाराम के घर की ओर धीरे बढ़ने लगा। ड्राइवर के हाथ में कागज में लिपटी फूलों की माला और टाफी-बिस्कुट के कुछ डिब्बे थे। ऊबड़-खाबड़ कच्ची संकीर्ण गली और उसके बीच में मुहल्ले भर की गन्दगी लेकर लबालब बहती कच्ची नाली। सावित्री ने नाक पर रूमाल रख एक अजीब सी हिकारत और उलाहना भरी दृष्टि से पति की ओर देखा। श्रीवास्तव साहब किसी आन्तरिक उल्लास में डूबे लापरवाही से आगे बढ़ते जा रहे थे कि पत्नी को नाक पर रूमाल रखे देखा तो सहसा उन्हें गली की गन्दगी का एहसास हो आया। उन्होंने भी पैन्ट की जेब से रूमाल निकाल लिया, पर कुछ सोचकर उसे नाक पर नहीं रखा।

आधे फूस और आधे खपरैल के बने दो छोटे-छोटे कमरे वाले एक कच्चे मकान के सामने आकर ड्राइवर शिव प्रसाद रुक गया।

"सर, यही भोलराम का घर है।"

आस-पास पूरा सन्नाटा था। दो छोटे बच्चे बाहर खड़े थे और एक बूढ़ी स्त्री ऐन दरवाजे पर, चौखट से सटे, मुड़े हुए घुटनों पर सिर टेके बैठी थी। उसका चेहरा दूसरी ओर था, केवल सन-से सफेद बालों वाला उसका सिर ही दिखाई दे रहा था। देखकर समझ पाना मुश्किल था कि वह जगी है या बैठे-बैठे ही सो गयी है। दरवाजे के सामने इतने सारे अपरिचित लोगों को खड़े देखकर दोनों बच्चे अंदर की ओर भाग गये।

'सर, लगता है, लोग लाश को लेकर श्मशानघाट चले गये......यहां तो कुछ भी...कोई भी दिखाई नहीं देता। शिवप्रसाद साहब की ओर मुड़कर बोला।

श्रीवास्वत साहब को एक झटका-सा लगा। क्षणभर के लिए उन्हें ऐसा महसूस हुआ जैसे, उनकी सजी-सजाई बारात लड़की वाले के दरवाजे पर लगी हो और कोई कह दे, "लड़की को मुहल्ले वालों ने कहीं भगा दिया... शादी नहीं होगी।" अब तक उनके चेहरे पर जो उत्साह और तृप्ति की चमक दिखाई देती थी, वह एक झटके के साथ बुझ गयी। एक लम्बी सांस लेकर वह किसी तरह बोल सके, "पता करो, क्या हुआ... ?"

तभी घर के अन्दर से एक मरियल-सी औरत अस्त-व्यस्त हालत में दरवाजे पर आ खड़ी हुई। बाहर खड़े लोगों की ओर फटी-फटी आँखों से क्षण भर देखती रही और फिर यक-ब-यक बेतरह रो पड़ी। चौखट के पास

बैठी बुढ़िया भी सिर उठाकर अपनी मिचमिचाती आँखों से आगन्तुकों को पहचानने की कोशिश करने लगी।

शिवप्रसाद उसकी ओर बढ़ गया। कुछ पूछता-बतियाता रहा, फिर पीछे मुड़कर साहब से बोला, "दो घंटे पहले टोले–मुहल्ले के लोग लाश को श्मशानघाट ले गये...अब तो लौटने वाले होंगे। यह भोलाराम की मां है, सर...और वह उसकी घरवाली...।"

"अब क्या करोगे...?" सावित्री ने पति की ओर देखकर पूछा।

"अब करना क्या है...लौट चलेंगे।" श्रीवास्तव साहब थके-थके से उदास स्वर में बोले, "व्यर्थ में कुछ पैसे भी बर्बाद हो गये।"

"सर, ये बिस्कुट और मिठाई के डब्बे उसके बच्चों को दे दूं...?" शिवप्रसाद ने अपने बगल में दबाकर रखे पाकेट को हाथ में लेकर पूछा।

"नहीं...।" श्रीवास्तव साहब खीजे स्वर में दृढ़ता से बोले, फेंक दो इसे कूड़े की ढेर पर... या ले जा अपने बच्चों को दे देना...मुहल्ले वाले लोग जब उसके इतने मददगार हैं तो, वे ही लोग उसके बाल-बच्चों को भी देखें...उसकी पेंशन और फण्ड में जमा रुपये भी अब वे ही लोग उसे दे दिला देंगे। देख लूंगा मैं कौन क्या करता है...साले! चलो यहां से...।"

और वे एकदम से पीछे मुड़कर तेज–तेज कदमों से चल दिये।

▣

जलसा

■ सलीम खान

सचमुच वह एक
बहुत बड़ा जलसा था
बड़े लोगों का
जलसे में। कुछ
बड़े लोगों ने
कुछ अन्य। बड़े लोगों को
फूलमालाएं पहनाई
फिर स्कूटर रेस हुई
फिर संगीत सुनने की बारी आई
उसके बाद
कुछ बड़े लोगों ने
समाज के छोटे लोगों के
बारे में बातें की
शहर के भिखारियों को
शानदार भोजन कराया
अखबारों में छपवाने के लिए
कई कई तस्वीर खिंचवाई
अंत में
कुछ बड़े लोगों ने
गर्व के साथ
छोटे लोगों से
रक्तदान की अपील की
कुछ छोटे लोग

तत्काल तैयार हो गये
लेकिन। उनमें से
एक सिरफिरे ने
विरोध कर ही दिया—
"हमें क्यों बेवकूफ बनाते हो,
हर बार होता यही है कि
हम गरीबों के खून का
तुम मुट्ठी भर बड़े लोग ही
फायदा उठाते हो"
कुछ बड़े लोगों के इशारे पर
पुलिस का एक सिपाही
तत्काल वहाँ आया
उसने उस छोटे आदमी को
शराबी कहकर दूर भगाया
इस प्रकार
बड़े लोगों की
दूर दूर तक फैल गई बड़ाई
मगर ऐसा पहली बार हुआ
कि बड़े लोगों के इस जलसे में
छोटे लोगों ने
तालियां बिल्कुल नहीं बजाईं।

मालिक

✤

▪ सोहन शर्मा

तब मैं आदिम था
जंगलों में रहता था
कंद-मूल/मांस खाता था
तुम मेरे साथ रहती थीं
हम साथ रहते थे
मैं (शायद थककर)
तुम्हारे साथ सोते हुए
खुद को हल्का कर लेता था,
यह हम दोनों को अच्छा लगता था।
पता नहीं/तब हम प्यार करते थे या नहीं!
तब तुम्हारा कोई नाम नहीं था
मेरा कोई नाम नहीं था
नामों को रिश्तों में बदलने वाला
कोई नाम नहीं था।

धीरे-धीरे
एक जंगली गुलाब पसरता गया मेरे भीतर
अपने लिए जगह बनाता हुआ
मैं आदिम से आदमी होता गया
मुझे अहसास हुआ, फुर्ती का—
पेड़ों पर चढ़ सकने की
तेजी का—
जानवर को दबोचने की

लगा कि मैं हाथ पांव
ज़्यादह देर तक हिला सकता हूं—
बिना थके-हांफे
तब मुझे रिश्ते जरूरी लगा
और मैंने तुम्हें एक नाम दिया।
उन दिनों मैंने
हिरन का शिकार करना सीख लिया था।
तुम्हें नाम देकर मुझे काफी सुविधा हुई थी
मैं उसे प्यार से पुकार सकता था
गर्व कर सकता था—
"यह मेरा दिया हुआ नाम है"
"मेरा है"
लोगों को बता सकता था, जैसे—
यह मेरी जमीन है......मेरा मकान है,
उन दिनों मैंने चीजों को नाम देकर
उनका इस्तेमाल करना सीख लिया था।
धीरे-धीरे एक नदी मेरे भीतर बनती गयी
पाट फैला कर
खेत बनाते हुए
और पानी के सहारे
मैं पेड़ों से घरों में आ गया
तब—
नामों और रिश्तों के साथ
मैंने तुम्हें प्यार करना शुरू किया था।

तुम्हारे साथ सोना
तब भी अच्छा लगता था
पर कभी-कभी ऊब जाता था
एक ही शरीर की गंध से
ऊब के विकल्प में

मैंने प्यार को (प्यार ही तो)
गहराइयाँ दी, व्यापकता और विस्तार दिया
आदिम भूख को
व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम
हम-बिस्तर बदलने की आजादी दी
उन दिनों
तुमसे अक्सर पूछा करता था—
        तुमने ताजगी और रंग भर देने वाले
        खिलखिला कर बहते हुए झरने देखे हैं ?
        तब
        तुम्हारे लिए इन्द्रधनुषी अंधेरे रचकर
        मैं तुम्हें प्यार करने लगा था ।

तुम्हें याद है ।
मैं भटक कर कण्व के आश्रम में आ गया था
तुम झाड़ी की ओट से रीझ गयी थी
मैं भोग कर भूल गया था
श्राप तो एक बहाना था
हर बार तुम्हें ही रोना था
मेरा क्या होना था
तुम्हें आग से गुजार कर
धोबी को श्रेय लेने दिया था
आदमखोर जंगल बनाने का
        पुरुषों में उत्तम बनकर
        मैं तुम्हें बहुत प्यार करने लगा था
तुम्हें प्यार करते-करते
खड़ी फसल की तारीफें
मुझे अच्छी लगने लगी थीं
जाला बुनती मकड़ी को देखना
उन दिनों मैंने

अपनी आदत बना ली थी
प्रकृति की कुछ और भी चीजें थीं—
चांदनी, हवा, ओस, फूल, बादल, लहरें वगैरह
जो प्यार करने में मेरे काम आई थीं

अकेलापन, व्यर्थता, अधूरापन
ये कुछ शब्द थे
मेरे जाल के तागों के
तुम्हारे सामने कोई विकल्प नहीं था
तारे तोड़ लाने के मुहावरे पर रीझ जाने
मुझे प्यार करने
और
इस्तेमाल होते रहने का ।

पेड़ों की छांह से
मैं तुम्हें घर में ले आया था
घर में—
नाम थे, रिश्ते थे, वादे थे
और दीवारे थीं
खिड़कियां मैंने अपने लिए रख छोड़ी थी
नये दौर में
चुनिंदा अंशों पर निशान लगा कर
किताबें बदलते हुए
मैंने तुम्हें प्यार किया ।

पूरी यात्रा में
मैंने खिड़कियों पर पर्दे लगा रखे थे
जैसे फसल बचाने को
डरौने खड़े किए जाते हैं ।
मैं तुम्हें बहुत प्यार करता रहा
बस तुम्हारा खिड़की पर खड़े होकर

ताजी हवा में सांस लेना मुझे खलता था
मैं तुम्हें बड़ी शिद्दत से प्यार करने लगा था

मैं तुम्हें प्यार करता रहूंगा
मुझे चीजों का स्वामी बनना अच्छा लगता है ।

■

जीवन यदु की तीन कविताएं

जंगल गाथाएं

1

शेर ने कुछ इस तरह
बाँट रखा है अपना जंगल
कि सोता हुआ किसी गुफा में
वह होता है/पूरे जंगल पर सोया हुआ
या टहलता हुआ किसी पेड़ के नीचे
वह होता है/हरेक पेड़ के नीचे टहलता हुआ
और जंगल/हवा में काँपता हुआ
पूरी तरह जंगल
आश्चर्य तो यह/कि कँपाता हुआ भी जंगल ।

2

जंगल के सारे खंड
एक-एक चीते के जिम्मे में
और चीते/अपनी-अपनी जगह पर
होते हैं पूरा-पूरा शेर

वे जब भी करते हैं
अपने-अपने वन-खंडों का दौरा
लिखते हैं अपनी-अपनी डायरी में
केवल दो शब्द—
'सुख और शांति'
शेर को मालूम है
इन दो शब्दों की असलियत
वह जान लेता है
किन-किन भालुओं ने
तोड़े हैं कितने-कितने शहद के छत्ते
कितनी-कितनी हिरणियां हैं गर्भवती
कितने-कितने खरगोश हो चुके हैं तैयार
उसे मालूम हो जाती है
तेंदुओं और लकड़बग्घों की माली हालत
सियारों की चालबाजियाँ
हाथियों की करतूतें
तैर जाते हैं उसकी आँखों के सामने
चौकड़ी भरते बारहसिंगे
लपकते हुये खरगोश ।
मनमौजी गैंडों/फनफनाते जंगली भैंसों
और घुरघुराते जंगली सुअरों की बाबत
शेर सोचता है बहुत
उसकी सारी चिन्ता है
उनके शाकाहार को लेकर ।

3

शेर के सभासद हैं
केवल दौरा-मास्टर
फुदकते हुये खरगोश-बच्चे

ग्रौर चौकड़ी भरते हिरन-छौने
गाते हैं गीत लय में बाँध कर—
"कि कोई ग्राये पाँच साल में
कोई माहो-माह
पन्द्रह-दिनों में ग्राये-जाये
भालू साला स्याह"
दौरे का सारा इन्तज़ामी खर्च
उठाते हैं तेंदुए
चीते को मालूम है/कि तेदुग्रों के पंजे
होते हैं भालुग्रों की गर्दनों पर
जबकि भालुग्रों को पूरा-पूरा भरोसा
लकड़बग्घों पर होता है ऐसे वक्त
ग्रौर······ग्रौर एक लम्बा सिलसिला
पंजों ग्रौर गर्दनों का
लेकिन/जहाँ रुकता है सिलसिला
हो जाती है कुछ झाड़ियां सूनी
कुछ खरगोश गायब
हरी-हरी घास/ग्रौर पेड़ों के तनों पर
लाल-लाल धब्बे-छींटे
जंगल की शाही-मुहर,
शेर जानता है—
ग्रौर जानते हैं चीते भी
कि तब तक राज है उनका
जब तक नहीं जानते हैं बारहसिंगे
ग्रपने सीगों का सही इस्तेमाल ।

यह मैं नहीं कह सकता

■ अनवर शमीम

बच्चा खिलखिलाता है
घोड़े की हिनहिनाहट हवा के
बदन पर
कोड़े की तरह बरसती है ।
घोड़े की हिनहिनाहट
अब, ऊंची इमारतों की
खिड़कियों को नहीं छुपाती
और
बच्चे की खिलखिलाहट
मोम के आखिरी सिरे की तरह
भभक कर बुझ जाती है
घोड़ा बच्चे की हंसी
के लिये
हर दिन सलामती की दुआएं
मांगता है
और हांफ जाता है
हर सुबह
घोड़े की मौत की
दुआएं मांगने वाले मायूस
होते हैं
बच्चा जिस दिन ठठाकर
हंस पड़ेगा
घोड़े की हिनहिनाहट से

ऊंची इमारतों की शीशेदार
खिड़कियां कब झड़ जायेंगी
और किस पल घोड़े की मौत
के लिये
दुआयें मांगने वाले पथरा
जाएंगे
यह मैं नहीं कह सकता

ऊपर महल

जसवीर चावला

ऊपर महल में सब एक है
जरूरत पड़ी तो तुम्हारी आवाज़ कुचलने के लिये
वही असले आयेंगे जिन्हें
दाँतों में रखने से तुम्हें भड़काया जाता रहा है
मदारी के डमरू और बंसी से कभी
सोनागाछी में क्रांति आयेगी ?
अरे ये, किस्से-कहानियाँ
रेखायें - वार्तायें
विवाद-चरण
सब बवण्डर है
तुम्हारी आँखों का दीवाला पीटने के लिये
नहीं तो क्या
दहलते नागासाकी से प्रशांत महासागर सुरक्षित है ?
वियतनामी गुप्त कब्रगाहों की खोज से युद्ध बंद हो गये ?
ये पौराणिक कथाओं के मसाले लगे भाषण

ये जज़्बातों को उखाड़ने वाले चटपटे उपदेश
ये जाति-देश के नाम पर उबालने वाले कोरे संदेश
ऊपर महल में सब एक है।
स्वांग करती डमरू और बांसुरी !
तुमने कभी रूपये का सिक्का हथेली में नहीं कसा
फिर आँख के सामने रख उसमें झाँका नहीं ?
तुमने देखा होगा
उंगलियाँ उसी तरह पत्थर हो जाती हैं
जैसे ट्रिगर पर
निगाहें उसी तरह अंधी हो जाती हैं
जैसे सूरज ताक कर
फिर तुमने देखा होगा
लोहे की चद्दरें काटते चिज़ल का सर
हथौड़ों की मार से भत्थ हो जाते हैं
पेट में आग लगती है
तब तुम तलाश करते हो
कहाँ रोटी बड़ी और मोटी पकती है
कहाँ साथ में तरकारी फ्री मिलती है
खेत सोना उगलते है
तो तुम्हें धोती रेशमी मिलती है ?
...अरे, ऊपर महल में सब एक है
ढाह दे रे, ढाह दे
तेरे लिये बनाये गये सारे
जेल, कैदखाने
कानून के ताले और थाने

"पहल" परिशिष्ट/

अखबार

वामपंथ के विरुद्ध एक जहरीली बंदूक (देशबन्धु)

परचा

"बरनत छवि जहाँ तहाँ सब लोगू ।
अवश देखिये देखन जोगू"—प्रगतिशील लेखक संघ, छतरपुर का परचा ।

दूसरी पत्रिकाओं से

अरुण कमल की कविता (कंक)

भगत सिंह की साहित्य शैली (क्रमशः)

बुलेटिन

चांदामेटा-छिंदवाड़ा के खदान क्षेत्रों से कोयला मजदूरों और आदिवासियों की हालत

रिपोर्ताज

म. प्र. जन नाट्य संघ के राज्य सम्मेलन के दो दिन

महत्वपूर्ण पत्रिकाएं

कथा प्रतिमान/यात्रा/अभिप्राय

गतिविधियां

महत्व त्रिलोचन/इंदौर

महत्व भीष्म साहनी/बिलासपुर

प्रेस नोट

'तुगलक' के प्रदर्शन को रोकने पर निर्देशक प्रसन्न की प्रतिक्रिया

किताबें

कमीज पर

ऋण गुणा ऋण

खबरें

बिहार प्रेस बिल

मंगलेश डबराल

मुक्तिबोध पर मोनोग्राफ

पत्र

मन्मथनाथ गुप्त

शम्भुनाथ

विजेन्द्र

वामपंथ के विरूद्ध एक जहरीली बंदूक

इस एक साल के भीतर रायपुर में तीन ऐसे महत्वपूर्ण सम्मेलन हुए हैं जिनकी ओर लोगों और सरकार का जितना ध्यान जाना चाहिए था उतना नहीं गया। इन तीनों सम्मेलनों के बारे में खबरें छपीं किन्तु इन खबरों के पीछे जो खबरें छिपी थीं उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। इन्हीं तीन सम्मेलनों में से १९, २०, २१ फरवरी को रायपुर में सम्पन्न म० प्र० स्तरीय पत्रकार सम्मेलन भी है जिसका विषय था – "प्रेस प्रजा और राज्य।"

इस सम्मेलन को सम्बोधिन करने के लिए "इंडियन एक्सप्रेस" के सम्पादक श्री अरुण शोरी, एक साप्ताहिक "रविवार" के सम्पादक श्री सुरेन्द्र प्रताप सिंह को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था किन्तु स्वीकृति देने के बाद भी दोनों न जाने क्यों नहीं आ पाये। अन्य आमंत्रित पत्रकारों में से थे 'इंडियन एक्सप्रेस' के ही भू० पू० सम्पादक श्री अजीत भट्टाचार्य, "रीडर डाइजेस्ट" के सम्पादक श्री राहुल सिंह और दैनिक नई दुनियाँ के प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र माथुर।

अतिथि पत्रकारों का चुनाव जिस सूझ बूझ के साथ किया गया था वह इसके पूर्व सम्पन्न दो सम्मेलनों के अतिथियों से बहुत भिन्न नहीं था। इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए अंचल के करीब १२० पत्रकारों को भी बुलाया गया था। पूर्व में सम्पन्न दो सम्मेलनों की ही तरह इस सम्मेलन का स्वर भी राज्य विरोधी था।

इस सम्मेलन के कुछ दिन पूर्व ही श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक विदेशी पत्रकार को इंटरव्यू देते हुए कहा था कि भारतीय पत्र जगत विपक्ष की भूमिका अदा कर रहा है। जाहिर है कि श्रीमती गांधी ने बड़ी प्रसन्नता में यह बात नहीं कही थी। नाराजगी में गाली ही दी थी पर इस पत्रकार सम्मेलन ने इस गाली को गुलाब जामुन की प्लेट की तरह स्वीकार कर लिया और इस बात पर सील मुहर लगा दी कि भारतीय पत्रकार जगत विपक्ष की भूमिका अदा कर रहा है क्योंकि भारत में विपक्ष जैसी कोई चिड़िया उड़ती ही नहीं।

बहरहाल यह एक अलग विषय है जिस पर अलग से बहस की जा सकती हैं। यहाँ तो हमें यह जानने की कोशिश करना है म० प्र० जन अधिकार परिषद (पी. यू. सी. एल.) नामक बन्दूक की नली का लक्ष्य क्या हैं इसके लिए कारतूस कहाँ बन रहा है और धुआँ कितनी दूर तक फैला है।

१६ फरवरी को जिस अग्रसेन भवन में पत्रकार सम्मेलन हुआ इसके कुछ माह पूर्व वहीं पर महिला जागृति सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ था जिसकी प्रमुख वक्ता थीं श्रीमती प्रमिला दंडवते। मानुषी की सम्पादिका, किश्वर, सुप्रीम कोर्ट की वकील श्रीमती इंदुजय सिंहानी एवं दिल्ली विश्व-विद्यालय की कुछ छात्राएं। पत्रकार सम्मेलन के माध्यम से जिस तरह यह साबित करने की कोशिश की गई कि "इंडियन एक्सप्रेस" समाचार देश के मजदूरों एवं कमजोर वर्गों का सबसे बड़ा हिमायती है उसी तरह से महिला जागृति सम्मेलन के जरिये यह साबित करने की कोशिश की गई थी कि "मानुषी" पत्रिका महिलाओं के अधिकारों के लिए बहुत बड़ी लड़ाई लड़ रही है। अब यह अलग बात है कि ये दोनों बातें न तो लोगों के गले के नीचे उतर सकती थीं न उतरीं।

इसी सिलसिले में इस बात का जायजा भी ले लेना चाहिए कि इन आयोजनों का उद्देश्य क्या है और इनके पीछे कौन हैं? महिलाओं, मजदूरों, पत्रकारों और वकीलों को संगठित करने के पीछे इरादा क्या है? (मई 1982 में ही जबलपुर में वकीलों का सम्मेलन इसी श्रृंखला के तहत प्रस्तावित है)

जन अधिकार परिषद (पी. यू. सी. एल.) का जाल यूं तो पूरे देश में है पर म. प्र. इकाई का गठन 8 मार्च 81 को भोपाल में किया गया। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र को इसका अध्यक्ष बनाया गया। एस. एन. सुब्बाराव उपाध्यक्ष राजेन्द्र के. सायल महासचिव, कु. साधना सक्सेना और डा. कौशल किशोर मिश्रा सचिव, एच. एन. एस. राना इसके कोषाध्यक्ष हैं। सदस्यों में दो भूतपूर्व राज्यमंत्री श्री ओमप्रकाश रावल भूतपूर्व राज्यमंत्री और वर्तमान में म. प्र. विधान सभा के संसद सदस्य श्री यमुना प्रसाद शास्त्री है। म. प्र. पी. यू. सी. एल. के महासचिव हाउसिंग बोर्ड कालोनी शंकर-नगर रायपुर में निवास करते हैं और रायपुर में संपन्न इन सभी सम्मेलनों के सफल आयोजक हैं। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शशि सायल कंधे से कंधा मिलाकर उनके साथ काम करती हैं।

श्री सायल नवयुवक हैं, उत्साही हैं, लगनशील हैं और उनका सबसे बड़ा गुण है कि वे बहुत पढ़ते हैं और बहुत अच्छा बोलते हैं। उनकी वाणी

प्रभावशाली और दृष्टि बहुत पैनी है। जांच पड़ताल की भी अपार शक्ति है उनमें ।

श्री सायल का आगमन करीब 5-6 वर्ष पूर्व इलाहाबाद से रायपुर हुआ था। गास मेमोरियल में उप संचालक के पद पर संभवतः मसीही प्रचार के लिए। किन्तु यह पद श्री सायल की शक्ति के अनुपात में बहुत छोटा था। अतएव वे अलग हो गये और एक नई संस्था बना ली। रायपुर चर्चेच डेवलपमेंट कौंसिल और इसी संस्था के माध्यम से वे 27 एक्शन ग्रुप्स का संचालन करने लगे और अन्य बहुत सी संस्थाओं से जुड़ गये और तलाश करने लगे ऐसी संस्थाओं और प्रतिभाओं की जो सत्ता के विरुद्ध थे या किये जा सकते थे। उनकी पत्नी श्रीमती शशि ने अपने ढंग से काम शुरू किया। वे झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाली महिलाओं से मेलजोल बढ़ाने में लग गई। दोनों पृथक छत्तीसगढ़ आंदोलन से भी जुड़ गये।

जिन संस्थाओं से सायल दपत्ति का संबंध है उनमें से कुछ प्रमुख है अंकुर फार्म-ग्राम दमडी (अनूपपूर), लहर जांजगीर, किशोर भारती बनखेड़ी, परिवर्तन कांकेर, छत्तीसगढ़ युवक संघ अभनपुर, छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा बालौद, ग्रामीण शिल्प शाला महासमुन्द, महिला जागृति संगठन रायपुर, जंगल बचाओं समिति रायतुंग (महासमुंद) म. प्र. जन अधिकार समिति रायपुर, रायपुर जनाधिकार एवं प्रजातांत्रिक संगठन, छत्तीसगढ़ नाट्य समिति महासमुंद, डाकूमेंटेशन सेंटर बंबई, जनवादी सूचना केंद्र रायपुर, समकालीन तीसरी दुनिया दिल्ली, मानुषी दिल्ली, वाम इंडिया बिलासपुर आदि।

रायपुर में संपन्न तीन सम्मेलनों और इन संस्थाओं पर अगर एक सरसरी नजर डाली जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन सबका वामपंथ से कोई संबंध नहीं है। पर श्री सायल ने मार्क्सवाद का गहरा अध्ययन किया है और वामपंथ की अभिव्यंजना के लिए उनके पास एक लुभावनी शब्दावली है। यही वजह है कि आज वे इस अंचल के 'महान' श्रमिक नेता गुहा नियोगी के अत्यन्त निकट हैं और सबसे अधिक विश्वासपात्र। यही वजह है कि नियोगी के छत्तीसगढ़ श्रमिक संघ ने 15 हजार रु. के पुरस्कार की व्यवस्था की है जिसमें से 10 हजार का पहिला पुरस्कार इंडियन एक्सप्रेस के ही भोपाल स्थित संवाददाता श्री एन. के. सिंह को मिला है जो इस पत्रकार सम्मेलन के संयोजक भी थे।

गुहा नियोगी की गिरफ्तारी के समाचार को देश भर के समाचार पत्रों ने जितनी प्राथमिकता दी थी उतनी बहुत कम श्रमिक नेताओं को

मिलती हैं। यह महज एक संयोग ही नहीं था। नियोगी को सारा देश अब तक एक प्रखर मजदूर नेता के रूप में जानता रहा है पर 19 जनवरी के 'भारत बंद में जब उनके श्रमिक संघ ने भाग लिया तो सारे वामपंथी नेता भौंचक्के रह गये।

ऐसा नहीं है कि श्री नियोगी का संबंध कभी कम्युनिस्ट पार्टी से था ही नहीं। उनका भी उसी तरह से कम्युनिस्ट पाटी से संबंध था जिस तरह कभी मजदूर नेता श्री ए. के. राय. शिब्बू सोरेन और डा. दत्ता सामंत का संबंध था। जिस तरह ये लोग असंतोष, ऊब या महत्वाकांक्षा के कारण वामपंथी आंदोलन से छिटक कर पृथक हो गये उसी तरह श्री नियोगी भी अलग हुए हैं। यह तो श्री राजेन्द्र सायल की दूर-दृष्टि है जो बहुत दिनों से नियोगी पर लगी हुई थी। वे अवसर की ताक में थे जो नियोगी की गिरफ्तारी से उन्हें मिल गया।

वामपंथी आंदोलन शक्ति हर क्षेत्र में बड़ रही है। जाहिर है कि दक्षिण पंथी शक्तियां उसे दबा नहीं सकतीं। अतएव यह जरूरी हो गया है कि एक नकली वामपंथ की संरचना की जाय हर क्षेत्र में, एक ऐसा मोर्चा तैयार किया जाय जो कभी भी आंदोलन का माध्यम बन सके। छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चे का उद्देश्य है छोटा नागपुर की-सी स्थिति पैदा करना या फिर छत्तीसगढ़ में असम जैसी स्थिति पैदा करना। इसके लिए महिलाओं, मजदूरों पत्रकारों एवं वकीलों को संगठित करने की जरूरत है। श्री सायल इस जरूरत को बखूबी अंजाम दे रहे हैं।

ऐसी संस्थाओं को गांधी शांति प्रतिष्ठान का सहयोग और आर्शीवाद दोनों प्राप्त है। ऐसे संगठनों को देश और विदेश दोनों से सहायताएं मिलती हैं। संगठन और समाज के नाम पर ये संस्थाएं क्या करती हैं यह बात अब किसी से छिपी नहीं है। बावजूद इसके जरूरी हो गया है कि इन सभी संस्थाओं के कार्यकलापों की पूरी बारीकी के साथ जांच की जाय। विलेषकर गांधी शांति प्रतिष्ठान जैसी संस्था की जिसने देश भर की सत्ता विरोधी संस्थाओं को हर तरह की मदद पहुंचाने का बीड़ा सा उठा लिया है।

राजनारायण

देशबंधु, रायपुर से

▣

प्रगतिशील लेखक संघ, छतरपुर

वरनत छवि जहाँ तहाँ सबस लोगू । अबदेखिए देखन जोगू ।।

इतिहास में एक मुहावरा पढ़ने को मिलता है कि जब रोम जल रहा था तब नीरो बाँसुरी बजा रहा था । नीरो रोम का शासक था, उसने जिन्दगी भर सिर्फ बाँसुरी,बजाई थी और जो रोम जल रहा था, उसे बनाने के लिए उसने कुछ नहीं किया था । इसलिए उसके जलने का उसे कोई रंज नहीं था । वह तो मजे से शासक वर्ग की कलाप्रियता का आदर्श इतिहास में दर्ज करवा रहा था ।

पिछले कुछ दिनों से मध्य प्रदेश सरकार पर भी कलाप्रियता सवार हो गई है । जिन हरिजन आदिवासियों की वस्तियाँ जला दी जाती हैं, जिनकी महिलाओं के साथ खुले आम इलात्कार होता है, जिन्हें समाज में तरह-तरह की यातनायें देकर सताया जाता है, उनके लिए सरकार ने एक नया विभाग खोल दिया है—लोक कला विभाग । जिन क्षेत्रों के पेट में अकूत खनिज छिपे हुए हैं और जहां के वहु सँख्यक ग्रामवासी आज भी आधा पेट खाकर जीवन जीवन यापन कर रहे हैं—उन क्षेत्रों के लिए अलग से क्षेत्रीय कला और संस्कृति परिषदें बनाई गई हैं । जैसे, बुन्देलखण्ड कला एवं संस्कृति परिषद । उन्हें मोटी-मोटी रकमें दी गई हैं, तरह-तरह के जनता से कटे हुए फिरकेवाज विद्वान जुटाये जाते हैं । हम एक बार फिर कहेंगे कि जनता से कटे हुए लोग होते हैं ये । चाहे इनमें शामिल साहित्यकार या बुद्धिजीवी हों, राजनीतिक नेता हों या अन्य । अगर ऐसा न होता अगर इनकी नजर उस किसान के चेहरे की ओर गयी होती जो हाल की भीषण ओलावृष्टि में अपनी फसलें, अपना घर, अपनी सारी पूँजी गवाँ बैठा है, तो ये यह ढोल तमाशा जुटाने के वजाय उसकी उजड़ी हुई जिन्दगी फिर बसाने की ओर ज्यादा रकम खर्च करते । वह किसान जो इस बुन्देलखण्ड की कला और संस्कृति का मेरुदण्ड है, जिसकी पीढ़ियों के मेहनत का चमत्कार आज हमें खुराहो की मूर्तियों, ईशुरी की फागों और प्रचुर सांस्कृतिक रचनाओं के रूप में दिखाई देता है ।

फिर एक बात और है—इतिहास अथवा संस्कृति को पेश करना एक नाजुक खेल होता है । यह तय बात है कि किसी क्षेत्र की संस्कृति का निर्माण

उस क्षेत्र के समस्त निवासी करते हैं न कि उनका कोई एक वर्ग या तबका। इसलिए जब कभी भी इतिहास के प्रति संकीर्ण नजरिया अपनाया जाता है, सामयिक तनाव बढ़ते हैं—बेचारे आयोजक तो नादान हैं लेकिन हमारे गतिशील मुख्यमन्त्री जिनकी धर्मनिरपेक्षता, वर्तमान भारतीय राष्ट्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पर कतई संशय नहीं किया जा सकता—पता नहीं किस कलाप्रियता के वशीभूत इस तरह के तमाशों में आते हैं जो मुल्क की क्षेत्रीयता भाषा या वर्ग के आधार पर अलग-अलग टुकड़ों में देखने का रिवाज पनपा रहे हैं।

जिस सर्वहारा की भलाई शासन का पुनीत कर्तव्य कहकर बार-बार सरकार आचमन कर रही है, वह जब तक भूखा है, जब तक उस पर अत्याचार हो रहे हैं, जब तक मजदूर किसान कर्मचारी नौजवान आर्थिक संकटों के मारे दर-दर भटक रहे हैं, जब तक बच्चे सही इलाज के अभाव में मर रहे हैं तब तक इन आयोजनों के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है, जैसा कि तुलसीदास ने कहा है—

चलत कुपथ वेद मन छाँड़े, कपट कलेवर कलिमल भाँड़े।

क्योंकि संस्कृति का निर्माण तो वह कर रहा है जो संकटों से जूझ रहा है—जो चिल-चिलाती धूप, गरजती बौछारें और वक्त के पत्थर खुले आसमान के नीचे अपने सर पर झेल रहा है। जिसका रास्ता, सीधा सच्चा, जीवन के लिए संघर्ष का रास्ता है।

देखना है कि उस संघर्षरत बुन्देलखण्डी मानव के कितने कलात्मक और साँस्कृतिक रूप "बुन्देलखण्ड कला एवं संस्कृति परिषद" द्वारा आयोजित समारोह में दिखाई देते हैं—अगर ऐसा नहीं होता तो मुख्यमन्त्री के आगमन और संस्कृति समारोह पर ओला पीड़ितों की सहायता से अधिक रकम खर्च किया जाना नीरो का बाँसुरी बजाना ही कहा जा सकता है।

बुन्देलखण्ड और खासकर छतरपुर के नायक और अधिनायक बनने वालों को यहाँ की जनता की सांस में छाँह लेनी होगी। यश और कीर्ति की पताका फहराकर इस बहादुर और संघर्षशील समाज का नायकत्व सम्भव नहीं है।

भगतसिंह की साहित्य शैली

मराठी में प्रकाशित श्री बा० बा० महराजा की सरदार भगतसिह नामक कादम्बरी पढ़ते समय मुझे भगतसिंह द्वारा क्रांति शब्द की यह व्याख्या उपलब्ध हुई। क्रमशः के पाठकों के लिए समर्पित यह सार्थ ग्रंश।

सरदार भगत सिह ने "इन्कलाब जिंदाबाद" नारे को लोकप्रिय वनाया। उन्हें एक मुकदमें की सुनवाई के समय जव कोर्ट लाया जाता, तो वे रामप्रसद 'बिस्मिल' की गजल गाते व बाद में "वन्दे मातरम्" व 'इन्कलाव जिन्दावाद' के नारे लगाते। उस पर कलकत्ता से निकलने वाले "मॉडर्न रिव्यू" नामक पत्र के संपादक श्री रामानंद चटर्जी ने अग्रलेख लिखा, जिसमें कि क्रांति के लिए उक्त नारे को भगतसिंह द्वारा प्रारंभ किया गया ऐसा लिखा था। इस पर जेल से भगतसिंह ने उन्हें लिखा कि सम्पादकीय के लिए धन्यवाद, किन्तु 'इन्कलाब जिन्दावाद' (क्रांति चिरायु रहे) इस नारे का रचनाकार मैं नहीं हूँ, इस वाक्य का प्रथम प्रयोग रूस के क्रांति काल में किया गया था। यह वाक्य प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अॅप्टन सिक्लयर ने अपने एक उपन्यास के पात्र से कहलवाया था, जो मुझे पसंद आया। अतः मैंने उसे ग्रहण किया। "क्रांति" शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए भगतसिंह लिखते है कि क्रांति शब्द का अर्थ प्रगति के लिए परिवर्तन की भावना और आकांक्षा है। लोग साधारणतः जीवन की परम्परागत दशाओं के साथ-साथ चिपक जाते है, और परिवर्तन के विचार मात्र से ही कांपने लगते हैं। यही वह अकर्मण्यता की भावना है, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि—

अकर्मण्यता का वातावरण निर्मित हो जाता है और रूढ़िवादी शक्तियां मानव समाज को कुमार्ग पर ले जाती है। वे परिस्थितियां ही मानव समाज की उन्नति में गतिरोध का कारण बन जाती हैं। क्रांति की इस भावना से मनुष्य जाति की आत्मा को स्थायी तौर पर ओत-प्रोत रहना चाहिए, जिससे रुढ़िवादी शक्तियां मानव समाज की प्रगति की दौड़ में बाँधा डालने को संगठित न हो सके। वह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव बदलती रहे और वह नई व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त करती रहे जिससे आदर्श व्यवस्था को बिगड़ने से रोका जा सके। यही है वह अभिप्राय जिसको हृदय में रखकर हम इन्कलाब जिन्दावाद का नारा ऊंचा करते हैं।

▣

"जिन्हें चाहिये पूरी दुनिया" / उदय प्रकाश के लिये

अरुण कमल की कविता

मैं इम्फाल नहीं जाऊँगा
मैं यहीं इसी शहर में मूंगफली बेचकर
जिन्दगी गुजार दूंगा
लेक़िन अरुण में इम्फाल नहीं जाऊंगा

लेकिन अरुण मैं आसाम नहीं जाऊंगा
मैं यहीं इसी शहर में पत्नी और बच्चे के साथ
भीख मांग कर जिन्दगी गुजार दूंगा
लेकिन अरुण मैं आसाम नहीं जाऊंगा

मैं उत्तर जाऊंगा
दक्षिण जाऊंगा
मैं पश्चिम जाऊंगा
लेकिन अरुण पूरब नहीं जाऊंगा

वे मार देंगे
वे मेरी पत्नी मेरे बच्चे को कत्ल कर देंगे

उदय, सुनो उदय, इतना भावुक मत बनो उदय
कहीं तो जाओगे
कहीं तो रोजी खोजोगे उदय
जरा सोचो उदय, तुम मेरे ही बारे में सोचो
सोचो मैं इम्फाल गया

ग्रौर लोगों ने कहा तुम बाहरी हो
फिर मैं दिल्ली आया
ग्रौर दिल्ली वालों ने कहा तुम बाहरी हो
तब मैं ग्रपने पटना ग्राया
ग्रौर पटना वालों ने कहा तुम यहाँ पैदा भी नहीं हुए
तुम्हारा यहाँ ग्रपना मकान भी तो नहीं है
कहाँ जाऊंगा मैं ? फिर कहाँ जाऊंगा ?
इसका तो कहीं कोई ग्रन्त नहीं
न मेरा कोई घर है न कहीं कोई जमीन
जब जहाँ खड़ा हूँ वही मेरा घर वही मेरी धरती है
उस समय

कहाँ जायेंगे वे लोग
जिनका कहीं कोई घर नहीं
कहीं कुछ भी स्थिर नहीं
जहाँ कहीं जल मिले थोड़ी सी मिट्टी
उग जायें वहीं—
कहाँ जायेंगे वे लोग जिन्हें चाहिये पूरी दुनिया ?

[कंक 59]

कोयला खदानों से

छिंदवाड़ा जिला सारे देश में कोयला खनिज एवं अपनी विशिष्ट लोक संस्कृति के लिये जाना जाता है। 11,824 वर्ग कि. मी. क्षेत्रफल वाले इस जिले के ग्रामीण क्षेत्र का क्षेत्रफल 11,798.8 कि. मी. है। करीब 12 लाख आबादी वाले इस विशाल जिले की आधी से अधिक आबादी आदिवासियों की है। अनेक जाति एवं उप-जातियों में विभक्त ये आदिवासी छिंदवाड़ा तहसील के तामिमा एवं जामई ब्लाक, अमरवाड़ा तहसील के अमरवाड़ा एवं हर्रई ब्लाक के ग्रामीण पर्वतीय क्षेत्रों में सदियों से वनोपज पर आश्रित रहते आये हैं। पूरा छिंदवाड़ा जिला जो कि सतपुड़ा पर्वतश्रेणियों से घिरा है, में हर्रा, बहेड़ा, गोंद, चिरौंजी आदि वनोपज आदिवासियों के मुख्य आर्थिक आधार है। लेकिन जबसे इन वनोपज के लिए शासकीय ठेका प्रथा चली है, ठेकेदार हर स्तर पर आदिवासियों का शोषण करते हैं। इसके अलावा जंगल कटाई के समय भी शासकीय एवं गैर-शासकीय एजेंसियाँ इनकी शारीरिक क्षमता का पूरा दोहन करती है लेकिन मेहनत के मुआवजे के रूप में इन्हें आज भी वही हासिल होता है, जो वर्षों पहले होता था।

तामिया ब्लाक के पातालकोट आदिवासी क्षेत्र के बारे में तो कभी यह बात प्रचलित थी कि यहां के आदिवासी नमक के बदले में चिरौंजी देते हैं। आज यह स्थिति इस तरह बदली है कि अब चावल की कनकी के बदले चिरौंजी आसानी से प्राप्त की जा सकती है। ठेकेदार इस प्रथा को बरकरार रखने के लिए भोले-भाले आदिवासियों की धार्मिक भावनाओं और उनके अंध-विश्वासों का भी दुरुपयोग करते हैं और उन्हें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक क्षेत्र में कभी भी सक्रिय नहीं होने देने की घृणित प्रकिया जारी रखते हैं। हाँलाकि सरकार आदिवासियों के विकास के लिए छिंदवाड़ा जिले में तीन आदिवासी परियोजनाएं और पातालकोट क्षेत्र के लिए एक स्वतंत्र "पातालकोट विकास अभिकरण" के जरिये प्रति वर्ष करोड़ों रुपया फूंकती है किन्तु नौकरशाही और पूंजीवादी व्यवस्था के हाथ में इन सुविधाओं का वितरण होने से आदिवासियों को

सुविधा मिलना तो दूर, उन्हें योजनाओं की जानकारी तक भी नहीं रहती। इसका एक कारण आदिवासियों की अशिक्षा तो है ही, उनका वह खतरनाक अंधविश्वास भी है, जिसके तहत उनके जीवन में घटित सब कुछ दैविक चमत्कार माना जाता है।

म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ की छिंदवाड़ा जिला इकाई ने आदिवासियों को साक्षर करने से लेकर उनको शिक्षित करने तक का एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया है, जिसके तहत सर्वप्रथम आदिवासी क्षेत्रों के निवासी व्यक्तियों की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों की पड़ताल की जायेगी और फिर—इकाई के साथी अपनी जिम्मेदारी क क्षेत्र में स्थानीय स्थितियों को मद्देनजर रखते हुए आदिवासियों को शोषण के खिलाफ तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य करेंगे। इस हेतु प्र. ले. सं. के साथी शिवनारायण शर्मा, प्रो. हरमीतसिंह उप्पल, राजेश झरपुरे और जगदीश गढ़वाल कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं।

छिंदवाड़ा जिले में हमारा दूसरा कार्यक्रम पश्चिमी कोयला खदान क्षेत्र के पेंच एवं कन्हान कोयला खदान क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों के लिए है। यह कार्यक्रम मजदूरों की ध्वस्त आर्थिक स्थिति और भ्रमित मानसिक स्थिति के साथ ही उनकी अनिश्चित सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति पर आधारित है। इस कार्यक्रम के तहत पहले दोनों कोयला खदान क्षेत्र में कार्यरत करीब 25 हजार मजदूरों के बीच सूदखोरों की स्थिति का पता लगाया जायेगा।

इस सर्वेक्षण के बाद राष्ट्रीयकरण के पहले और बाद की स्थिति में सूदखोरों को कार्यप्रणाली की समीक्षा की जायेगी। यह स्मरणीय है कि आज जबकि कोयला खदान मजदूर को मोटी तनख्वाह मिलती है, के बाद भी करीब 35 प्रतिशत मजदूर सूदखोरों की गिरफ्त में है। सूदखोर जो कि आम तौर पर शारीरिक और आर्थिक दृष्टि से--सम्पन्न होता है, हमेशा यह सोचता रहता है कि एक बार उसकी गिरफ्त में आने के बाद मजदूर को किस तरह हमेशा फाँस कर रखा जा सकता है। आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि लगभग 20 से 40 प्रतिशत तक व्याज लेने के बाद भी वह आज मजदूरों के लिए आवश्यक माध्यम बना हुआ है। इसका प्रमुख कारण मजदूरों में व्याप्त नशीली आदतें, फिजूल खर्ची तो है ही उसकी अशिक्षा और वह वातावरण है जिसके साथ वह वगैर सोचे-समझे जुड़ा हुआ है।

मजदूरों को सूदखोरी से मुक्त करने के लिए हमने कारगर उपाय सोचे हैं और इसके लिए सर्वप्रथम उन्हें शिक्षित किया जाना पहला मुद्दा

चुना गया है। तनख्वाह का सदुपयोग, मजदूरों की व्यर्थ आदतों से मुक्ति, श्रमिक संघों की भूमिका, मजदूरों में सही और गलत को पहचान की समझ आदि कार्यक्रम एक के बाद एक सुनियोजित ढंग से अमल में लाये जायेंगे। इस हेतु हमारा सर्वेक्षण कार्यक्रम प्रायः पूरा हो गया है और हम मैनेजमेंट और शासकीय एजेंसियों के अतिरिक्त श्रमिक संघों के तौर तरीकों की पड़ताल करके, उनके जरिये ही इस महानतम कार्य के लिए अनुकूल स्थितियाँ निर्मित करवाने के प्रयास में हैं।

आपसे आग्रह है कि जनजातियों और औद्योगिक मजदूरों के लिए तैयार किये जा रहे हमारे उपरोक्त कार्यक्रमों पर अपनी प्रतिक्रिया, सुझाव आदि भेजें ताकि इन कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावशाली और जीवंत बनाया जा सके।

प्रेषक
शिवनायण शर्मा
सचिव
म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ, छिंदवाड़ा
पो. चाँदामेटा, 480 447, मध्यप्रदेश

भारतीय जन नाट्य संघ, "इप्टा" का मध्यप्रदेश राज्य सम्मेलन, एक रिपोर्ताज

मध्यप्रदेश के सुदूर पूर्वांचल में स्थित आदिवासी बहुल जिला रायगढ़ में भारतीय जन नाट्य संघ "इप्टा" का दिनांक 22-23 मई 82 को राज्य स्तरीय सम्मेलन हुआ।

सम्मेलन का उद्घाटन छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध रंगकर्मी राजकमल नायक ने और समापन प्रगतिशील लेखक—महासंघ के महासचिव प्रख्यात लेखक श्री भीष्म साहनी ने किया।

सम्मेलन में प्रान्त के विभिन्न हिस्सों से आये प्रसिद्ध लेखक रंगकर्मी कलाकार, सामाजिक कार्यकर्त्ता बड़ी संख्या में प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए राजकमल नायक ने इस बात पर खुशी जाहिर की कि म० प्र० में पहली बार कला के क्षेत्रों में काम करने वाले समर्पित लोग इप्टा के बैनर के नीचे इस उद्देश्य से एक जुट हुए हैं कि जनवादी संस्कृति पर सत्ता के आक्रमण तथा पतनोन्मुखी संस्कृति के प्रसार के खिलाफ क्या कारगार कदम उठाया जाय और परिवर्तन कामी शक्तियों के संघर्ष को अधिकाधिक शोषित पीड़ित आबादी तक पहुँचाने के लिये नाट्य कला का किस प्रकार उपयोग किया जाय।

सम्मेलन में रंगकर्म से सम्बन्धित 4 महत्वपूर्ण आलेख पढ़े गये। पहला आलेख डा० रमाकान्त श्रीवास्तव, खैरागढ़, ने "आधुनिकता रंगकर्म और हमारा दायित्व" पर, दूसरा पुन्नीसिंह राजनांदगाँव, ने "सोदेश्य रंगकर्म और नाट्य लेखन की समस्याएँ" पर, तीसरा आलेख विजय गुप्त, अम्बिकापुर ने और प्रभाकर चौबे, रायपुर ने तथा चौथा आलेख प्रवीण अटलूरी भोपाल ने—"बुर्जूवा रंगमंच की विकृतियों एवं चुनौतियों के विरुद्ध मोर्चा तथा जनवादी संस्कृति पर सत्ता का आक्रमण और पतनोन्मुखी संस्कृति का प्रसार" पढ़ा। आलेख पर जीवन्त बहसें हुईं। बहस में हिस्सा लेने वालों में रायगढ़ के पुराने रंगकर्मी श्री रजनीकान्त मेहता, अशोक कुमार झा, जीवनसिंह ठाकुर, प्रवीण अठलूरी, डा० रमाकान्त श्रीवास्तव, डा० बल्देव प्रसाद साव, प्रभाकर

चौबे, डा० कमला प्रसाद पाण्डेय, डा० मिश्रा, सुरेश पाण्डेय, सुरेश शर्मा, हिमांशु राय आदि थे। दो दिनों की जीवन्त बहस के बाद जो परिपाक तैयार हुआ वह म० प्र० जन नाट्य संघ का आउट लाईन ही है। जिसके आधार पर भविष्य का कार्यक्रम तय किया गया जो इस प्रकार है।

देश की अग्रगामी प्रगतिशील ताकतों ने मौजूदा व्यवस्था और जन जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से मजबूत धरातल तैयार करने का जो बीड़ा उठाया है उसमें सक्रिय भागीदारी के लिये सर्वहारा वर्ग को मानसिक रूप से तैयार करने के लिये सभी माध्यमों को एकजुट कर उन्हें सार्थक मोड़ देने की नितान्त आवश्यकता है। लेकिन, यह काम असम्भव न होते हुए भी आसान नहीं है।

अभिव्यक्ति और प्रचारतन्त्र के लगभग सभी माध्यमों एवं साधनों पर यथा स्थितिवादियों, जूटशाहों, इजारेदार घरानों और प्रतिगामी ताकतों का गहरा शिकंजा जकड़ा हुआ है। इसके अलावा परिवर्तन कामी शक्तियों के लिये यह गहरी चिन्ता का विषय है कि मौजूदा व्यवस्था को जो गैर बरावरी, शोषण तथा जनवादी उभार को कुचलने के हथकंडों, पर आधारित है, सत्ता-तन्त्र के वर्तमान ढाँचे का भरपूर सहयोग तथा संरक्षण हासिल है जिसके कारण जनवादी क्रान्ति के जरिये नई व्यवस्था की आधार भूमि तथा व्यापक मानसिकता तैयार करने में कदम-कदम पर रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है।

ताहम, इस विश्वास को नकारा नहीं जा सकता कि वर्तमान सड़ी-गली व्यवस्था का अन्त होना इतिहास की एक–अनिवार्य आवश्यकता है। जनवादी ताकतों के उभार को दक्षिण पंथी खेमें के षड़यन्त्रबद्ध हथकंडे अधिक दिनों तक रोक पाने में असमर्थ हैं। उन्हें बचाव और आत्मसमर्पण के लिये निश्चय ही विवश होना पड़ेगा।

यही वह समय है जबकि गर्म लोहे पर चोट करने के लिये बाजुओं के अलावा अपनी भाषा की ताकत को भी तौलना है। हमें जरूरत है एक ऐसी भाषा और संवाद की जो यथार्थ के समस्त बिम्बों और आज की व्यवस्था के भीतर छिपे समस्त विरोधाभासों को बड़े सहज और तीखे ढंग से आम जनता के सामने प्रस्तुत कर उसे नये परिवर्तन के लिये मानसिक रूप से तैयार कर सकें। ऐसी भाषा को एक हथियार के रूप में पेश करना जन-नाट्य आन्दोलन के माध्यम से ही सम्भव है। हमारे देश में साक्षरता की दयनीय स्थिति के कारण लिखित साहित्य के द्वारा ऐसी भाषा को तथा उसमें निहित

संदेश को जन-जन तक पहुँचाना प्राय: असम्भव है, इसलिये परिवर्तन की मानसिक भूमिका तैयार करने में जन-नाट्य आन्दोलन का महत्व और भी बढ़ जाता है।

प्रगतिशील कतार पर और उसके साथ जुड़ने के लिये संकल्पबद्ध होने की तैयारी में जुटी जनशक्ति पर प्रहार करने के लिये प्रतिक्रियावादी दक्षिण-पंथी और फिरकापरस्तों के फासिस्ट खेमों ने अलग-अलग मोर्चे खोल रखे हैं। एक तरफ शोषण विहीन समाजवादी समाज-रचना के ढोंग-ढकोसले के पीछे प्रायवेट इजारदारों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपना जाल फैलाने की छूट दी जा रही है, गुट निरपेक्षता की आड़ में तीसरी दुनिया के मुक्ति आन्दोलन को कोरे शाब्दिक आश्वासनों से टाला जा रहा है तो दूसरी ओर मानव स्वतन्त्रता और संस्कृति के पुनर्निर्माण के नाम पर जनजीवन की गहराइयों से जुड़ी हुई लोक कलाओं को विकृत करने और जन सामान्य की सांस्कृतिक रुचियों को क्षयग्रस्त मूल्यों के साथ जोड़ कर उन्हें सतही मनोरंजन में बदलने की चेष्टा की जा रही है जिसमें इस देश का जुट प्रेस पूरे उन्माद के साथ जुड़ा हुआ है।

कलाओं को शासकीय प्रोत्साहन देने की आड़ में नव अभिजातवर्ग की मानसिक विलासता की सामग्री जुटाई जा रही है जो कि मध्ययुगीन सामन्ती चरित्र को पुन: स्थापित करने का घिनौना प्रयास है। इस तरह आम आदमियों की परिष्कृत रुचियों को कुंठित करने और विषयगामी बनाकर उसे मानसिक तौर पर पतनशील मूल्यों एवं रूढ़ियों का गुलाम बनाये रखने का षड़यन्त्रबद्ध प्रयास किया जा रहा है। बौद्धिक जड़ता की स्थिति बनाए रखना यथास्थितिवाद की सुरक्षा की प्राथमिक शर्त है इसलिये देश की समस्त प्रतिक्रियावादी खेमा इस शर्त को पूरा करने में जुटा हुआ है।

सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर फैलाये जा रहे षड़यन्त्र के इस ताने बाने को छिन्न-भिन्न करने के लिये आज नाट्य आन्दोलन के माध्यम से ऐसी जन मानसिकता तैयार करने की आवश्यकता है जो अपनी कला और संस्कृति के सार्थक प्रासंगिक और समर्थ मूल्यों को पहचानते हुए तमाम रूढ़ियों, विकृतियों और संकीर्णताओं की सलाखों को तोड़कर प्रतिगामी ताकतों पर सीधे-सीधे प्रहार करने की क्षमता जुटा सके।

जनवादी रंगकर्मियों को आज अपने यथार्थवादी प्रस्तुतीकरण के माध्यम से केवल प्रगतिशील सांस्कृतिक चेतना का ही विकास नहीं करना है बल्कि उनके कन्धों पर यह गम्भीर सामाजिक दायित्व भी आता है कि वे

बुनियादी प्रतिवर्तन के उद्देश्यों से और उन उद्देश्यों के मार्ग में गतिरोध उत्पन्न करने वाली ताकतों के दम-पांखण्ड और कपटजाल से जनसामान्य को भली-भांति परिचित कर क्रान्तिकारी खेमे के सांस्कृतिक दस्ते के रूप में अपनी भूमिका को सार्थक सिद्ध करने का एक जुट प्रयास करें।

बोर्जुआ रंगमंच द्वारा जनसाधारण की मूलभूत समस्थाओं, संघर्षो और उद्देश्यों को ओझल करते हुए और उनके महत्व को नकारते हुए मानसिक विकृतियों, कुंठाओं तथा काल्पनिक अंतर्द्वन्द्वों का जो छद्म जाल फैलाया जा रहा है वह देश के समूचे जन मानस को विकलांग, अहाय और नैराश्य जड़ित बनाकर दक्षिण पंथी हमले को तेज करने वड़यंत्र का एक अभिन्न अंग है जिसके प्रतिकार में जन-नाट्य आन्दोलन को पूरे वेग से सक्रिय होना है ताकि सड़क नाट्य रंगमंच तथा दूसरी प्रचलित रंग विद्याओं का उपयोग कर सोद्देश्य, सार्थक और यथार्थ परक विषय दृष्टि के साथ लोक संस्कृति ग्रामीण नाट्य, ग्रामीण उत्सव, जात्रा, नाचा, आदि विविध प्रचलित रूपों को बदलते संदर्भो में प्रयुक्त कर आदिवासी अंचलों, ग्रामों, शहरों की कामगार बस्तियों और उन मोहल्लों तक, जहां आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ दलित और शोषित समाज समाज बसता है, नाट्य-नाटिकाओं, गीत नाट्यों आदि रंगकर्म के माध्यम से परिवर्तनगामी मानसिकता का नया ज्वार उभारा जा सके।

देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन के अलावे हमारे जनवादी संस्कृति के प्रागंण में प्रतिगामी ताकतों के हथकंड़ों के कारण जो खतरे मंडरा रहे है उन्हें तोड़ने के लिये जन-नाट्य आन्दोलन को क्रांति के अग्रगामी सांस्कृतिक दस्ते के रूप में संघर्ष की अगली पांत पर कतारवद्ध करना है ताकि जनता की संकल्प शक्ति को डांवाडोल करने वाले भीतरघाती प्रयासों पर सीधा प्रहार किया जा सके।

जन-नाट्य आन्दोलन जाति, धर्म भाषा और विघटनशील कला-संस्कृति के कटघरों को तोड़ कर सर्वहारा समाज को एक विर्णायक नियामक शक्ति के रूप में उभारने के लिए रंग कर्म को एक सशक्त हथियार के रूप में इस्तेमाल करने के लिये प्रतिवद्ध है।

जन-नाट्य आन्दोलन आज की तमाम विसंगतियों और विकृतियों पर फैसलाकुन हमला करने और जनसामान्य की दिशा हीनता को खत्म कर परिवर्तन के लिए छटपटाती जन मानसिकता को सही मोड़ देने के लिए पूरी तरह एक जुट है।

भारतीय जन-नाट्य मंच अपनी इस प्रतिबद्धता को फिर से दोहराता है कि वह समाज की तमाम बदनाम और बुरी बातों को अवांछनीय व्यवस्था को और जनाधिकारों का हनन करने वाले सारे हथकंड़ों को उनकी पूरी विकृतियों के साथ जन साधारण के सामने प्रस्तुत करने में पीछे नहीं हटेगा क्योंकि हर तरह में शोषण, दमन, अत्याचार और फासिस्टवादी साजिशों का अन्त कर प्रगतिशील जनवादी समाज के निर्माण के लिये शत्रु पक्ष को पूरी तरह निहत्या कर तेने और रास्ते के रोड़े बनने वाले तत्वों की अच्छी तरह शिनाख्त कर लेने की अहम जरूरत है। तभी हम इतिहास को उसके सही रास्ते पर आगे बढ़ा सकते हैं।

अपने समापन भाषण में प्रख्यात लेखक भीष्म साहनी ने बताया कि इप्टा की उत्पत्ति और विकास दूसरे महायुद्ध के दौरान कितनी विषम सामाजिक, राजनीकि, आर्थिक परिस्थिति में स्वयं स्फूंत तरीके से हुआ था। बंगाल के अकाल से पैदा हुई भयावहता, और सरकार की उपेक्षा पूर्ण नीति से देश के सामाजिक स्तर पर जो विरोध मुखर हो रहा था वह अभूतपूर्व था। जनविरोध की दिशा को तथा विशाल शोषित आबादी को नाट्य के माध्यम से जागृत, चेतना सम्पन्न करने की आवश्यकता के रूप में इप्टा अपने प्रारंभिक काल में छोटी-छोटी नाट्य टोलियों के रूप में उभर कर सामने आया था जो आगे चलकर एक सशक्त संगठित आन्दोलन के रूप में शहरों और कस्बों में फैल गया था। साम्राज्यवाद के विरुद्ध मुक्ति आदोलन को तेज करने में इप्टा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

एक लम्बे अन्तराल के बाद मैं देख रहा हूँ कि कुछ कुछ वैसी ही फिजा जो दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद थी आज भी दिखाई दे रही है इप्टा स्वतः स्फूंत ढंग से गठित हो रही है। जगह-जगह इकाइयों के गठन के पत्र आ रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम इन बिखरी हुई इकाइयों को एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन का रूप में दें। सम्मेलन की समाप्ति को घोषणा के साथ ही मध्यप्रदेश इप्टा एक सशक्त संगठन के रूप में उभर कर सामने आ गया। सर्व सम्मति से इप्टा के संविधान और घोषणा पत्र को स्वीकृत किया गया और तालियों की गड़गड़ाहट के साथ इप्टा के प्रान्तीय सचिव के पद का भार साथी विजय गुप्त ने तथा कोषाध्यक्ष पद का भार अजय आठले ने वहन किया। दो संरक्षकों के नाम पर उपस्थित प्रतिनिधियों ने खुशी जाहिर की। सर्व श्री हरिशकर परसाई और रायगढ़ के पुरानेरंग कर्मी उमाशंकर को संरक्षक बनाया गया है। एक प्रान्तीय कार्यकारिणी भी बनाई गई है।

यात्रा–1

अनिल खम्परिया द्वारा संपादित "यात्रा" का यह प्रवेशांक है। इसकी पक्षधरता एवं तेवर स्पष्ट हैं, जिसका स्वस्थ प्रमाण है हरिशंकर परसाई की रचनाएं। परसाई अपनी रचना (ठिठुरता हुआ गणतंत्र) में एक ओर जहाँ विभिन्न स्वार्थी, आत्मलिप्त राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता हथियाने तथा शोषण विहीन समाज एवं श्रम के मूल्यांकन पर आधारित सामाजिक व्यवस्था लेने के सब्जबाग को नग्न करते हैं, वहीं दूसरी ओर (चूहा और मैं) में सामान्य आदमी से अपने को अस्तित्व में लाने हेतु बुनियादी बदलाव का आह्वान करते हैं। इस आह्वान में न क्रान्तिकारिता का परिचय है न उथलेपन का रुक्ष रूप। यह रचना लेखक की दृष्टि–सम्पन्नता व सामाजिक मशीनरी की पहचान का बोध कराती है। कुंदन सिंह परिहार में यह दृष्टि और सामाजिक मशीनरी को पहचाने का नजरिया तो है, किन्तु अधपका। वे एक ऐसे पूंजीवादी चरित्र को रोशनी में लाते हैं, जो स्वयं अनैतिक है, किन्तु अपने अधीनस्थों से नैतिकता की अपेक्षा रखता है। परिहार इस चरित्र की मानसिकता को पूर्णतः व्यक्त करने में सक्षम नहीं है। विषय-सामग्री से इतर तथ्यों को अतिरिक्त व्याख्यायित करने के कारण राजेन्द्र दानी अपनी कहानी (बीच-बचाव) में कन्फ्यूज्ड हैं।

सेवाराम त्रिपाठी में यथार्थ को उसकी संश्लिष्टता में पकड़ने की क्षमता है, किन्तु वे कविता के पुराने मुहावरे से ग्रस्त हैं। ओम भारती में भी इसी मुहावरे बाजी का संस्पर्श है। जगनारायण मेहता इस खोट से दूर हैं। वे मनुष्य तथा स्थितियों के बदलते अन्तर्संबंध को बड़े ही सहज रूप में व्यक्त करते हैं।

डॉ नामवर सिंह अपने लेख (प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिशील लेखक) में प्रतिबद्ध लेखकों के जनवादी तथा प्रगतिशील खेमे में बटे होने के बावजूद प्रगतिशील विचारधारा के व्यापक प्रचार-प्रसार की बात करते हैं। वे पूंजीवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद के प्रतिपक्ष में खड़े होकर उसके चरित्र की तह में बैठे शख्स को सामान्य जन से साक्षात्कार करने की

अपील करते हैं। राजीव कुमार का लेख (प्रगतिशील मूल्यों के जन उपन्यासकार : नागार्जुन) उस जन से जुड़े रचनाकार की व्याख्या करता है, जो जनता के सामांतर न चलकर उसमें घुलमिल कर अपना बयान देता है।

स्व० प्रबोध मजुमदार की डायरी का अंश पत्रिका की महत्वपूर्ण सामग्री है, जो रचनाकार यशपाल के साथ ही उनके समकालीन रचनाकारों की रचना-प्रक्रिया को सामने लाता है।

संक्षेप में, "यात्रा" का यह प्रवेशांक निश्चित रूप से प्रगतिशील विचारों का दस्तावेज है। हम इसका स्वागत करते हैं।

कथा प्रतिमान–4

आज उन्हीं रचनाओं का महत्व है, जो समाज में व्याप्त वीभत्सता को उभाड़े, मानव-जीवन को संघर्ष की शक्ति दे तथा उसके विकास में सहायक हो। जो रचनाएं डिप्रेशन की ओर ले जाती हैं, वे हमारे लिए चिंताजनक हैं।

कथा प्रतिमान (अंक–4) रचना के इन गुणों को लेकर चल रहा है, जिसे स्वयं प्रकाश की कहानी 'चौथा हादसा' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'चौथा हादसा' आदमी के अंदर बैठी खूंखार साम्प्रदायिक बीमारी को सामने लाती है, जो आज के समाज में जड़ें जमाए है और जो उसके विकास के लिए घातक है। वास्तव में, यह बीमारी एक वर्ग या जाति विशेष की न होकर मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था की बीमारी है, जो समाज को अपने गलीज शिकंजे में जकड़े है। यद्यपि यह कहानी लेखक के विराट जीवन-अनुभव की सघनता को रेखांकित करती है, फिर भी विवरणात्मकता से ग्रस्त है। कहानी उन कारणों पर जरा भी ध्यान आकृष्ट नहीं कराती, जिसके कारण समाज साम्प्रदायिकता के गर्त में गिरता जा रहा है। कहानी का यह दोष कहानी को हल्का करता है। उदय प्रकाश की कहानी (ज्ञ, जेड, अलिफ; जगपति और कर्फ्यू) मध्यवर्गीय दब्बूपन को व्यक्त करती है, किन्तु इसमें शिल्प का अतिरिक्त आग्रह है, जिससे कहानी कथ्य को बहन करने में लंगड़ाने लगती है। अरविंद कुमार की कहानी (जिम्मेवार) अराजकता को प्रश्रय देती है। वास्तव में, अरविंद कुमार के पास जीवन-दृष्टि का अभाव है। वे हत्या के भय से शोषक के स्वभाव में तब्दीली का नजरिया प्रस्तुतत करते हैं, जो असंगत है।

स्वप्निल श्रीवास्तव, गोरख पाण्डे तथा भारत भारतद्वाज की कविताओं में अनुभव की ताजगी है। ये मौजूदा जीवन में प्रवाहित बेचैनी, आशा-आकांक्षा को रूपायित करने में पूर्णतः समर्थ हैं।

नन्द किशोर नवल का लेख (शब्द जहां सक्रिय हैं) अंक की महत्व-पूर्ण सामग्री है। यह लेख आलोचना की उस स्वीकृत मान्यता व सोच को नकारता है, जो राजनीतिक कविताओं में साहित्यिकता के लोप की बात तेजी से करने लगी है।

कथा प्रतिमान का यह चौथा अंक प्रगतिशील मूल्यों ने प्रचार-प्रसार में प्रतिबद्ध होने के बावजूद सामग्री के चयन में किंचित असावधान है, जिसके कारण पत्रिका का तेवर धुंधला हुआ है।

अभिप्राय/2

राजेन्द्र कुमार द्वारा संपादित अभिप्राय जिस प्रतिबद्ध दृष्टि को लेकर रचनाएं प्रस्तुत कर रहा है, उसमें स्पष्टता आई है। यह स्पष्टता एक विचारों को जीवन में घुला मुलाकर प्रस्तुत करने, दूसरे, यथार्थ को उसकी गतिशीलता में प्रस्तुत करने में परिलक्षित होती है।

अमरकांत की कहानी (कबड्डी) में स्पष्टता सहज रूप में दिखती है। वे आयातित सभ्यता की "सुनहली सोच" में जीने वाले मध्यवर्गीय व्यक्ति के मोह भंग को अत्यंत ही सहज रूप में प्रस्तुत करते हैं कि विचार आरोपित नहीं होते। लेकिन यहीं अखिलेश चूक जाते हैं। वे विचारों को पात्रों के मुँह में रख देते हैं, जिससे कहानी (पिंजड़े में खुशबू) की सारी सहजता नष्ट हो जाती है। यह बात अलग है कि वे यथार्थ को उसकी द्वन्द्वात्मकता में पकड़ते हैं, पर विचारों का आरोपण यथार्थ की सारी सुन्दरता नष्ट कर देता है।

राजेश जोशी (करीम खां कोयले वाले की दास्तान) और भारत यायावर ('लड़ाई,' 'आदमी कहां पीड़ित नहीं है') की कविताओं में व्यापक जीवन दृष्टि है। इसमें न आरोपित दृष्टि का खोट है न अतिरिक्त शिल्प का आग्रह। ये शोषण पर आधारित मौजूदा व्यवस्था में व्यापक स्तर पर टूट रहे आदमी की जिजीविषा को रोशन करती हैं—क्या यह आंच जो बताती हैं दूसरों की राजी-खुशी/हमारी खुशी का फरिश्ता नहीं बन सकती कभी? (राजेश जोशी)।

वैज्ञानिक विचारधारा मानवीय होती है। शोषित और शोषक का विभेद कर, शोषित की पक्षधर होकर बुनियादी बदलाव की अपेक्षा करती है। डॉ. कमलाप्रसाद अपने लेख (साहित्य और विचारधारा) में आज के साहित्यकारों से इसी विचारधारा से लैस होने की अपेक्षा करते हैं ताकि बुनियादी बदलाव की प्रक्रिया तीव्र हो। साहित्यकार जब वैज्ञानिक विचार-धारा से सम्पन्न होगा, तभी वह समाज की मशीनरी में जंग खाए हिस्से पर आमूल-चूल परिवर्तन हेतु चोट करेगा।

इसी आशय की पुष्टि करता है अमरकांत का साक्षात्कार, जो बताता है कि लेखक की भूमिका की सार्थकता तभी है जब वह अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से व्यवहारतः युक्त होकर रचना में उसे उतारे और इस तरह उतारे कि जनता संवेदित हो सके।

कृष्ण प्रताप के पत्र, भीष्म साहनी का लघु पत्रिकाओं पर लिखा लेख अंक की महत्वपूर्ण निधि हैं। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि अंक की अधिकांश रचनाएं सामाजिक सरोकार से जुड़ी हैं।

▣

कविता जहाँ मिलेगी, हम उसका जिक्र करेंगे

सम्मान समारोह में श्री त्रिलोचन शास्त्री

'गर हिन्दी और उर्दू को एक ही भाषा की तरह देखने समझने का काम शुरू हो जाए तो अंग्रेजी और फ्रेंच का समूचा संपन्न साहित्य हमारी एक जबान के सामने फीका पड़ जाएगा। यह बात कही हिन्दी के शीर्षस्थ कवि त्रिलोचन शास्त्री ने। वे यहाँ अपने सम्मान में संयोजित 'महत्व त्रिलोचन' आयोजन में बोल रहे थे।

मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति भवन में 'महत्व त्रिलोचन' के दूसरे दिन शुरू हुए पहले सत्र में त्रिलोचन को अभिनन्दन पत्र और शाल भेंट किए गए। इस मौके पर विभिन्न संघों और संस्थाओं ने भी उनका स्वागत किया। इस सत्र के अध्यक्ष थे, शमशेर बहादुर सिंह। अपनी रचना प्रक्रिया पर बोलते हुए त्रिलोचन ने कहा कि इसके बारे में बोलना मुश्किल है। अगर जननी से पूछा जाए कि उसने कैसे जना तो जाहिर है कि वह कुछ नहीं बता पाएँगी। उन्होंने कहा कि अपनी ही रचना प्रक्रिया पर ईमानदारी से कह दिया जाए तो कविता की पॉलिश उखड़ जाएगी और अगर चतुराई से कहा जाय तो कवि बना रहना कठिन हो जाएगा। जननी की तरह कवि को भी वही पीड़ा बर्दाश्त करना होती है। बस, इतना ही काफी है कि मैं सुखनफहम हूँ और कविता जहाँ मिलेगी, मैं उसका जिक्र करूँगा।

त्रिलोचन ने कहा कि कवि के लेखन में निरन्तरता के साथ उसका कठोर संपादक बनना बेहद जरूरी है। उन्होंने कहा कि आज कहा जाता है कि कविता छन्द मुक्त हो गई है, जबकि अंग्रेंजी में जो गद्य है, वह भी विशुद्ध गद्य नहीं है। उसमें भी लयकारी है और एक रवानी है। अपनी कविताई के बारे में उनका कहना था कि अवधी भाषा ने मुझे कविता का संस्कार दिया। गाँव से मैंने सीखा और वही मेरे विश्वविद्यालय है। त्रिलोचन की शुरुआत बृज भाषा पर केन्द्रित रही। उन्होंने बताया कि बृज भाषा के बारे में यह कहा जाता रहा है कि इस जबान में लिखना आसान है, पर बाँचा जाना उतना आसान नहीं। त्रिलोचन ने इस बात पर एतराज लेते हुए कहा कि जब कविता लिखना मुश्किल न हो तब कवि होना मुश्किल हो जाता है।

हिन्दी और उर्दू का सवाल ऊठाते हुए, उन्होंने साफ किया कि दोनों को अलग-अलग रख कर देखना मुनासिब नहीं है। दोनों ही हिन्दुस्तानी है, याने जो फ़ारस की नहीं है। इस सिलसिले में उन्होंने कहा कि उर्दू की रवानी हिन्दी को सँवारती है।

सत्र के शुरू में केदारनाथ सिंह ने कहा कि त्रिलोचन अपनी कविता में सबसे ज़्यादा सहज हैं। उनकी सहजता और सरलता आज की कविता के लिए खासी बड़ी चुनौती है। उन्होंने कहा कि उनकी कविता की शांत स्थिर दीख पड़ने वाली वह सतह सबसे बड़ी चुनौती है, जिसके पीछे एक त्रासदी घटित हो रही है और एक संघर्ष छिपा हुआ है। केदारनाथ सिंह ने त्रिलोचन को अपने समकालीनों के संदर्भ में एक अलग तरह का कवि बताया। उन्होंने कहा कि त्रिलोचन का ज्यादातर काव्य जीवन तुलसी और कबीर की तरह बनारस में बीता। वहाँ त्रिलोचन जो लिख रहे थे, उससे ठीक विलोम बनारस में लिखा जा रहा था। वहाँ त्रिलोचन ने रूढ़िवादिता से संघर्ष किया। स्वयंचेता साहित्यकार का स्वाभिमान लगातार त्रिलोचन के भीतर जागता रहा। उन्होंने कहा कि यह गोष्ठी कवि को बड़े परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश है।

बाबा नागार्जुन ने इस मौके पर कहा कि मैं त्रिलोचन के महत्व को एक नए संदर्भ में देखता हूँ। बाबा ने कहा कि त्रिलोचन सामान्य घटनाओं को सरसरी तौर पर रचनाओं में समेटने के वजाय गहरी मार करने वाले कवि हैं। इनके सॉनेट्स रासायनिक प्रकिया में ढलते हैं, जो बहुत आसान नहीं। अध्यक्षता कर रहे शमशेर बहादुरसिंह ने कहा कि असल में त्रिलोचन का आरंभ बतौर आशु कवि हुआ था। उनका अपना एक विज्ञान है, जो पुस्तकों और शब्दों का नहीं बल्कि उनके पीछे के तत्वों का है। हालाँकि उनके शुरू-शुरू के सॉनेट्स पर बाहैसियत दोस्त गुस्सा भी आया था, लेकिन बाद में काफी ताजगी आई। शमशेर का खास आग्रह था कि त्रिलोचन के सॉनेट्स स्वरबद्ध किए जाएँ।

दूसरे सत्र में त्रिलोचन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर दो आलेख भी पढ़े गए। पहला आलेख ओम भारती (इन्दौर) ने पढ़ा, फिर दिविक रमेश (दिल्ली) ने। ओम भारती ने त्रिलोचन की शब्द यात्रा को रेखांकित करते हुए कहा कि उनके हर शब्द के पिछवाड़े एक इतिहास छुपा है। उनकी भाषा पहले संस्कृत निष्ठ थी, लेकिन बाद में वे लगातार सहज होते चले गए। दिविक रमेश ने त्रिलोचन के संसर्ग पर अपने कुछ नोट्स

पढ़े और कहा कि त्रिलोचन की कविता ऊपरी तौर पर अपने पहनावे में सादी लग सकती है, लेकिन जब हम उसके भीतर झांकते हैं तब वे उतनी ही असाधारण होती है, जितने कि त्रिलोचन। इन दोनों आलेखों पर हुई बहस कल की बजाय अधिक गुंथी हुई और बँधी हुई थी। राजेश जोशी, भरत यायावर, पूर्णचंद्र रथ, भगवत रावत, सुरेश बापना, प्रभु जोशी आदि ने भी बहस में हिस्सा लिया। दोपहर सत्र की अध्यक्षता नईम ने की।

म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ की इन्दौर इकाई के अध्यक्ष रामविलास शर्मा ने त्रिलोचन को शाल भेंट की और उपाध्यक्ष आलोक खरे ने सम्मान पत्र। पहले और दूसरे सत्र का संचालन क्रमशः भगवत रावत और कमला प्रसाद ने किया। इस मौके पर किशोर बागरे ने पोस्टर कविता की नुमाइश भी आयोजित की। म. प्र. प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा संयोजित महत्व श्रृंखला का यह चौथा आयोजन था। इसके पूर्व केदारनाथ, नागार्जुन और भीष्म साहनी के महत्व आयोजन क्रमशः भोपाल, रायपुर और बिलासपुर में आयोजित हुए थे।

"बिलासपुर में "महत्व भीष्म साहनी" आयोजन"

मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ ने "महत्व" के अन्तर्गत अपने अग्रज रचनाकारों के कृतित्व के सभी पक्षों पर चर्चा का एक वृहद सिलसिला प्रारम्भ किया है। भोपाल में "महत्व केदारनाथ अग्रवाल" और रायपुर में "महत्व नागार्जुन" आयोजन के पश्चात बिलासपुर में विगत् 24-25 मई को "महत्व भीष्म-साहनी" आयोजन सम्पन्न हुआ। इस दो दिवसीय आयोजन में ग्वालियर, भोपाल, सतना, जबलपुर, रीवां, शहडोल, दिल्ली के अतिरिक्त छत्तीसगढ़ अंचल के लगभग 110 प्रतिनिधियों ने शिरकत की।

आयोजन के पहले दिन दोपहर दो बजे पहली गोष्ठी प्रारम्भ हुई। इस गोष्ठी में भीष्म जी की कहानियों पर केन्द्रित आलेख पढ़े गए। अपने आलेखों में प्रभाकर चौबे, देवदत्त तिवारी एवं शीतेन्द्रनाथ चौधरी ने भीष्म जी की कहानियों के विभिन्न पक्षों को रेखांकित किया। आलेखों पर बहस का प्रारम्भ करते हुए डा० वीरेन्द्र मोहन (खैरागढ़) ने कहा—भीष्म जी की कहानियाँ पूँजीवादी, सामंतवादी विकृतियों को रेखांकित करती हैं। डा० मलय (जबलपुर) ने कहा—भीष्म जी की कहानियाँ मध्यम वर्ग की मानसिकता से सम्बद्ध होते हुए भी निम्न वर्गीय समस्याओं की गहराई से पड़ताल करती हैं। प्रवीण अटलूरी (भोपाल) के अनुसार भीष्म जी कहानियों में मनुष्य की जिजिविषा का प्रभावी चित्रण हुआ है। पुन्नीसिंह यादव ने कहा– भीष्म जी सर्वहारा को समर्पित कथाकार है। उनकी कहानियां मनुष्य की संघर्ष चेतना को बल देती हैं। शाकिर अली का मानना था कि भीष्म जी ने सामाजिक अन्तर्विरोधों को अपनी कहानियों में सफलता पूर्वक उभारा है। डा० रमाकान्त श्रीवास्तव (खैरागढ़) ने कहा—भीष्म जी कहानियों में प्रगतिशील जीवन-मूल्यों के साथ ही कलात्मकता भी है। भीष्म जी की एक विशिष्ट पहचान बन गई है। महावीर अग्रवाल (खैरागढ़) ने कहा कि—भीष्म जी कहानियों में तीखा व्यंग्य है। देवीशरण ग्रामीण (सतना) ने कहा – भीष्म जी हिन्दी कथा साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। दिनेश ठक्कर (बिलासपुर) ने भीष्म जी को सर्वहारा का लेखक बताते हुए माना कि उनकी कहानियां सामाजिक जीवन की विकृतियों का चित्रण करती हैं। कुन्दनसिंह परिहार (जबलपुर) के अनुसार भीष्म जी की कहानियों में सवेदनशीलता है और वे

बहु-आयामी हैं। राजकुमार सैनी (दिल्ली) ने कहा—भीष्म जी संवेदनशील कथाकार हैं। कोई भी रचना जीवन की संवेदना को समेटकर ही प्रभावशाली बन सकती है। भीष्म जी व्यापक संवेदन के हिस्सेदार हैं और यहीं पर भीष्म जी प्रगतिशीलता से जुड़ते हैं वे संवेदना का समाजीकरण करते हैं। कमला प्रसाद (भोपाल) ने कहा—लेखन की प्रगतिशीलता के लिए राजनीतिक प्रतिबद्धता जरूरी है। भीष्म जी की कहानियों में एक स्वस्थ राजनीतिक दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है। अन्त में अपनी कहानियों के विषय में बोलते हुए भीष्म जी ने कहा—वैचारिक धरातल पर आदमी कितनी भी समझ प्राप्त कर ले किन्तु केवल विचारों के आधार पर ही कहानी नहीं लिखी जा सकती। इसके साथ ही वैचारिक महत्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। एक रचनाकार वाले मेरे संस्कार हैं जो मेरे अंग बन गए हैं, मेरा पठन पाठन भी जिसने मुझे प्रभावित किया है वह मेरा अंग बन गया है, मैंने जो अनुभव किया और जो सोचा विचारा वे भी मेरे व्यक्तित्व के अभिन्न अंग बन गए हैं। अन्ततः लेखक को एक दृष्टि मिलती है जो इन सबसे निकलकर आती हैं। इस दृष्टि से मेरी कहानियों की सीमाएँ मेरी अपनी सीमाएँ हैं। इस गोष्ठी की अध्यक्षता कमला प्रसाद ने तथा संचालन विजय गुप्त (अम्बिकापुर) ने किया।

इसी दिन संध्या स्थानीय देवकीनन्दन दीक्षित सभा कक्ष में खुला अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर प्रसिद्ध कहानीकार अमरकान्त की अनुपस्थिति में राजीव कुमार ने उनका उद्घाटन भाषण पढ़ा। भीष्म साहनी को बिलासपुर इकाई की ओर से मानपत्र भेंट किया गया, जिसका पठन इकाई के सचिव रफीक खान ने किया। तत्पश्चात् आयोजन के अवसर पर प्रकाशित एवं डा० राजेश्वर सक्सेना तथा प्रताप ठाकुर द्वारा सम्पादित पुस्तक "भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना" का विमोचन अंचल के वरिष्ठ पत्रकार श्री राजनारायण द्वारा हुआ। पुस्तक की एक प्रति प्रताप ठाकुर ने भीष्म जी को भेंट की। इस अवसर परु ललित सुरजन (रायपुर) और दिल्ली से आये राजकुमार सैनी ने भीष्म जी के साहित्यिक योगदान की चर्चा की। भीष्म जी ने अपनी रचना प्रक्रिया, प्रतिबद्धता औह विचारधारा के विषय में महत्वपूर्ण बातें कहीं। खुले अधिवेशन की अध्यक्षता डा० रमाकान्त श्रीवास्तव और संचालन कमला प्रसाद ने किया। अन्त में राजकमल नायक द्वारा धूमिल की कविता "मोचीराम" की नाट्य प्रस्तुति एवं "इप्टा" अम्बिकापुर द्वारा "मशीन" नाटक का मंचन हुआ।

25 मई को प्रात: नौ बजे से भीष्म जी के उपन्यासों पर आधारित गोष्ठी प्रारंभ हुई। इस सत्र में रमेश अनुपम (कांकेर) राजकुमार सेनी (दिल्ली) और डा. वीरेन्द्र मोहन (खैरागढ़) ने आलेख पढ़े। चर्चा प्रारंभ करते हुए कमला प्रसाद ने कहा-समीक्षा का प्रतिनाम उपन्यास का चरित्र नहीं होता वरन् उपन्यास का टोटल परिदृश्य होता है। इस संदर्भ में उन्होंने भीष्म जी के उन्यास "बसंती" की चर्चा की और भीष्म जी के अन्य उपन्यासों की विशेषताऐं रेखांकित करते हुए उन्हें युगांतरकारी बताया। श्री सेवाराम त्रिपाठी (सतना) ने कहा-भीष्म जी ने हमारे समय की विभीषिका, विकृतियों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। प्रीतपाल सिंह (अंबिकापुर) ने कहा-तमस में साम्प्रदायिकता की समस्या को जज्बाती तौर पर नहीं उठाया गया है। दिनेश ठक्कर (बिलासपुर) ने कहा "तमस" उपन्यास आज के संदर्भ में हमारी कथनी पर एक तमाचा है। तरूण गुहा नियोगी ने कहा-भीष्म जी अपने उपन्यासों में स्थितियों की पड़ताल करते हैं। गोरेलाल चंदेल (खैरागढ़) ने कहा—भीष्म जी के उपन्यासों में विभिन्न वर्गो के चरित्र स्पष्ट होते हैं। प्रवीण अटलूरी (भोपाल) ने "तमस" और "बसंती" उपन्यासों की विस्तार से चर्चा की। शिवनाथ पाठक (जशपुर) ने कहा—भीष्म जी के उपन्यासों के चरित्र वर्ग चरित्र हैं। अशोक शर्मा (धमतरी) ने कहा—'तमस' में गुलामी के समय के भारत का चित्रण है। प्रभाकर चौबे ने कहा—साम्प्रदायिकता को गहरे रूप में समझने की जरूरत है। अंत में भीष्म जी ने उपन्यासों के चरित्र घटनाओं तथा स्थितियों की विस्तृत चर्चा की। गोष्ठी की अध्यक्षता डा. मलय तथा संचालन डा. रमाकांत श्रीवास्तव ने किया।

दूसरी गोष्ठी दोपहर दो बजे से शुरू हुई। इस गोष्ठी में भीष्म जी के नाटकों पर आधारित आलेखों का पाठ पुन्नीसिंह यादव (राजनांद गांव) तथा राजीव कुमार (रायपुर) ने किया। चर्चा की शुरुआत करते हुए प्रवीण अटलूरी (भोपाल) ने कहा—"हानूश में आया युग व्यावसायिक युग के फैलाव का काल था। कु. शिन्दे (ग्वालियर) ने कह—"हानूश" में धर्म और राजनैतिक षड़यंत्र में कलाकार किस प्रकार बर्बाद होता है इसका सजीव चित्रण है। डा. भगवान दास साफड़िया (सतना) ने कहा'—'कबिरा खड़ा बाजार" की भाषा आज की भाषा है। डा. मलय (जबलपुर) ने कहा—"हानूश" में श्रम-शील मनुष्य की चेतना का विकास रूपायित हुआ है। प्रभाकर चौबे (रायपुर) ने कहा—"कबिरा खड़ा बाजार में" नाटक में निम्न वर्ग की सामूहिक चेतना का चित्रण हुआ है। अंत में भीष्म जी ने

अपने नाटकों की रचना प्रक्रिया से संबंधित तथ्यों का उद्घाटन किया और कहा—"हर लेखक में अच्छाइयां और कमजोरियां होती हैं। आज जो अच्छाई है वह कल रहे, न रहे किन्तु मैं हार नहीं मानता, संघर्ष करता हूँ।

गोष्ठी की अध्यक्षता डा. रमाकान्त श्रीवास्तव एवं संचालन कमलाप्रसाद ने किया।

रात्रि नौ बजे "कथा-कथन" कार्यक्रम हुआ। इस कार्यक्रम में किसान सिंह दीवान, देवीशरण ग्रामीण (सतना), अपूर्व शिन्दे (ग्वालियर), जीवन यदुराही (खैरागढ़), ओमप्रकाश सहाय, (बिलासपुर) तथा डा. रमाकान्त श्रीवास्तव (खैरागढ़) ने रचनाएें पढ़ी। तत्पश्चात् संगठन संबंधी चर्चाएं हुई।

उक्त आयोजन में नगर के हर वर्ग के लोगों ने अपूर्व सहयोग दिया एवं सक्रिय भागीदारी की। हर दृष्टि से आयोजन सफल रहा।

—रफीक खान

नोट :—इस रिपोर्ट में डा० श्याम सुन्दर मिश्र की शिरकत का उल्लेख छूट गया है, जिसका खेद है।

प्रेस नोट

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर एक आक्रमण : लंदन के भारत उत्सव में प्रसन्न द्वारा निर्देशित प्रस्तुति "तुगलक" के प्रदर्शन को रोकने का प्रेरित प्रयास

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की रेपर्टरी ने मुझे 12 अप्रेल, 1982 को लंदन के भारत उत्सव हेतु गिरीश कर्नाड के "तुगलक" का निर्देशन करने के लिए अनुबंधित किया था। "तुगलक" उन तीन नाटकों में से एक था जो उत्सव में मंचन के लिये निर्धारित थे। यह उन चर्चाओं से जो रेपर्टरी के प्रमुख मनोहर सिंह के साथ मैंने की तथा उन अनेक प्रेस सूचनाओं से स्पष्ट है जो कम्पनी ने समाचार अभिकरणों, राष्ट्रीय प्रेस और उत्सव बुलेटिनों के द्वारा दी।

मेरा नाटक श्रीराम सेंटर प्रेक्षागृह में 15 जून से 18 जून 82 तक खचाखच भरे सदन में खेला गया। दर्शकों की प्रतिक्रिया तथा समालोचकों की प्रशंसा की दृष्टि से वह एक बड़ी सफलता थी। इस प्रस्तुति की मांग इतनी अधिक थी कि बीसों व्यक्तियों को टिकट न मिलने के कारण नाटक देखे बिन ही लौट जाना पड़ा।

अब मेरी समझ से उत्सव समिति ने नेशनल स्कूल आफ ड्रामा के निर्देशक श्री बी. एम. शाह की अनुशंसा पर उत्सव के कार्यक्रम में से मेरे नाटक को निरस्त करने का अचानक और इकतरफा निर्णय ले लिया है। इस निर्णय से उन तीन थियेटर विशेषज्ञों का कोई संबंध नहीं है जो नाटकों चयन के समय उत्सव समिति में थे। उनमें से दो—श्री अल्काजी, और बी. वी. कारंथ,—ने समिति से पहले ही इस्तीफा दे दिया था। तीसरे श्री गिरीश कर्नाड संयोग से इस नाटक के लेखक हैं और इसलिये वे "तुगलक" से संबंधित सभी निर्णयों से अलग रहना चाहेंगे। श्री बी. वी. कारंथ ने अपने त्याग पत्र के साथ उत्सव समिति के अध्यक्ष को भेजे गये पत्र में स्कूल की कार्यप्रणाली के प्रति अपनी गहरी नापसंदगी जाहिर की है।

रेपर्टरी ने "तुगलक" की मेरी प्रस्तुति पर लगभग पचास हजार रुपया व्यय किया है। उन्होंने इतना अधिक सार्वजनिक धन एक प्रस्तुति पर

खर्च क्यों किया, यदि उसे भारत उत्सव में नहीं भेजा जाना था ? मैंने अब तक स्कूल के लिये तीन नाटकों का निर्देशन किया है और उन सभी को समालोचकों की व्यापक प्रशंसा प्राप्त हुई। पिछले छः महीनों में स्कूल ने मुझे तीन कार्य दिये, दो नाट्य निर्देशन के और एक उनके रांची के विस्तार कार्यक्रम के निर्देशक का।

यह कहा जाता है कि बी. एम. शाह ने कहा कि श्री मनोहर सिंह, अल्काजी के मॉडल पर "तुगलक" की एक प्रस्तुति तैयार कर रहे हैं। यह सर्वविदित है कि मुझसे पूर्व अल्काजी, के समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया था और उन्होंने अपनी प्रस्तुति को समसामयिक बनाने से इन्कार कर दिया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उसे संशोधित करने का काम नये सिरे से करना होगा और उनके पास नयी प्रस्तुति के लिये वक्त नहीं है। अल्काजी के साथ उनकी प्रस्तुति में जो चालीस पात्र थे उनमें से अब रेपर्टरी के केवल तीन ही शेष हैं। दूसरे श्री अल्काजी, की प्रस्तुति खुले स्टेज की प्रस्तुति थी जो पुराने किले की पृष्ठभूमि में मंचित की गयीथी। बंद थियेटर के संबंध में उस मॉडल की बात करना हास्यापद है। यदि साँतवे दशक के अंतिम वर्षों की एक प्रस्तुति की खराब कापी को नवें दशक के आरम्भ से प्रस्तुत किया जाये तो क्या यह उत्सव का अपमान नहीं होगा ? क्या उत्सव समिति यह समझती है कि भारतीय थियेटर ने पिछले दो दशकों में कोई प्रगति नहीं की है ?

चूंकि रेपर्टरी ने बड़ी मात्रा में धन और हमारे बहुमूल्य समय के आठ सप्ताह व्यय किये हैं और चूंकि प्रस्तुति की अब भी मांग है, अतः उसका सार्वजनिक प्रदर्शन होना चाहिये। टिकट खरीदने वाली जनता ही निर्णय करे कि भारतीय थियेटर में क्या सही है और क्या गलत है।

जब गुण परीक्षण किया जाये तो वह सब व्यक्तियों और सब वस्तुओं पर लागू होना चाहिये। यदि अग आमंत्रित होने वाली दोनों, प्रस्तुतियां गुण परीक्षण में असफल हो जाती हैं तो उत्सव समिति क्या करेगी ? हम सब जानते हैं कि भारत उत्सव अगले दो माह में समाप्त होने जा रहा है।

कला कृतियां अनंत काल से इस प्रकार के आक्रमण सहती रही हैं। ब्रेख्त के एक अति प्रसिद्ध नाटक को फासिस्ट जर्मन अधिकारियों के द्वारा एकाएक वापस ले लिया गया और उसका स्थान एक ऐसे नाटक नें लिया था जो जर्मन राष्ट्रोन्माद और फासिज्म की प्रशंसा करता था। वह बहुत स्पष्ट है कि इस मामले में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में निर्देशक महोदय ने

अधिकारियों को खुश करने के अपने दृष्टिकोण के कारण राजनैतिक दबावों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है। जब कोई कला की कृति विशेषत: ऐसे आदमी के द्वारा प्रस्तुत की जाती है जिसका व्यवस्था-विरोधी रुख स्पष्ट हो तो उबके सामने और गंभीर कठिनाईयाँ आती हैं। लेकिन क्या आलोचना करना पाप है ? क्या सह सच नहीं है कि अधिकतर रचनाधर्मी लोग व्यवस्था विरोधी होते हैं ? सिर्फ उन्हीं आवाजों पर कान क्यों दिया जाता है जो व्यवस्था की लीक पर चलती है ?

मैं एक बार फिर दुहराता हूँ कि मेरी "तुगलक" की प्रस्तुति का कठोरतम गुण परीक्षण किया जाये। उसे भारतीय प्रेक्षकों को दिखाया जाये और उसकी चर्चा हो। जब संपूर्ण प्रस्तुति को बलाये-ताक रखने और उसे कचरेदान में डालने की कोशिश हो तो मुझसे मौन रहने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। थियेटर इतनी नाजुक चीज होती है कि मैं भावी पीढ़ियों से अपील भी नहीं कर सकता। नाटक को तुरन्त देखना जरूरी है। उसके निर्णायक समकालीन लोग ही हो सकते हैं। क्या यह मांग करना ज्यादती है कि इस नाटक की पुन: प्रस्तुति की जानी चाहिये ?

प्रसन्न
46, शाप स्ट्रीट, बासवनगुडी
बंगलोर, 560 004
कैंप का पता :—
बी— 69, पंडारा रौड,
नयी दिल्ली—110 003

मानवीय प्रश्नों से साक्षात्कार की कोशिश

प्रभावी और सार्थक कविता की पहली कसौटी है समकालीन मानवीय प्रश्नों से साक्षात्कार करने की पुरजोर कोशिश और सही उत्तर की तलाश। ज्वंलत मानवीय प्रश्नों से जब कविता कतराने लगती है तब तमाम शिल्पगत विशेषताओं के बाद भी वह निष्प्राण और प्रयोजनहीन होती जाती है। कई बार अपनी सम्पूर्ण कलागत बुनावट और लालित्यपूर्ण अभिव्यंजना के बाद भी कविता अनाकर्षक लगती है। पाठक उससे चमत्कृत भी होता है मगर कुछ प्राप्त नहीं कर पाता। कवि भले ही संतुष्ट हो ले मगर पाठक संतुष्ट नहीं हो पाता। वह कविता के माध्यम से उन संश्लिष्ट परिस्थितियों को समझना चाहता है जो कभी-कभी इतनी अमूर्त, अप्रत्यक्ष और अप्रकट होती हैं कि बिना विशिष्ट संवेदनात्मक अनुभवों के वह समझी ही नहीं जा सकती।

राधेलाल विजधावने की काव्य प्रक्रिया दो विपरीत छोरों से प्रारंभ होती है। एक छोर पर अधिकांश ऐसी कविताएं हैं जिनमें प्राकृतिक प्रतीकों और अमूर्त दृश्य बिम्बों का भव्य प्रदर्शन है। कवि न तो इस बात के लिये चिंतित है कि प्रतीकों के सार्थक संदर्भ हों और बिम्ब किसी कथ्य को सप्रेषित करने के लिए उपस्थित हुए हों। वह आत्ममुग्ध होकर भाषा की ऐसी सुन्दर संरचना प्रस्तुत करता है जिसमें कविता होने के सभी स्थूल चिन्ह विद्यमान हैं केवल सार्थक कथ्य छोड़कर।

कभी कभी यह स्थिति इसलिये भी आती है कि कवि शब्दों के सहारे संवेदनात्मक अनुभवों को अभिव्यक्त करने की व्यग्रता में वैचारिक सतर्कता के प्रति उदासीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह प्रारम्भिक अनुभवों के सहारे बिना कोई वैचारिक निष्पत्ति तक पहुँचे, जटिल और संश्लिष्ट अनुभूतियों को रूपकों, प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से जब व्यक्त करता है तब कविता का लिखित प्रारूप मूल संवेदनात्मक अनुभवों से काफी भिन्न हो जाता है कभी बिम्ब अस्पष्ट रह जाते हैं और कभी रूपकों का निर्माण अधूरा रह जाता है। रचना प्रक्रिया के साथ यह स्थिति तब तक रहती है जब तक कवि की वैचारिक निष्पत्ति कच्ची रहती है।

ग्राकाश में तनी ग्रांखें
पक्षियों के पंखों से
फिसलती हुई
बस्ती में गिरती हैं
ग्रौर हम
हवा ग्रौर ग्राकाश में फैले
हादसों के विरुद्ध
बांहे तानकर
खड़े हो जाते हैं

या "उसकी मौत" शीर्षक की निम्नलिखित पंक्तियां—

चहचहाती
चिड़ियां । सिर ग्रौर कंधों से उड़ी
ग्रौर मौसम की हवा
ग्रौर रंग ले गई

या "जंगल दुख" शीर्षक की ऐसी ही पंक्तियां—

जंगल में नदी रोई
पशु उदास मुद्रा में
लौट गये
इल्लियां खाकर
चिड़ियां उड़ीं
ग्रौर नदी में नहाकर
जंगल गीत गाने लगी

इन कविताग्रों में सभी शिल्पगत विशिष्टताग्रों के बाद भी कोई सार्थक वक्तव्य नहीं है । हो सकता है कवि कुछ बड़ी ही कीमती बात कहना चाहता हो, कोई मौलिक प्रश्न हो जिससे वह साक्षात्कार करने की कोशिश कर रहा हो मगर ग्रधूरे प्रतीक ग्रौर ग्रस्पष्ट रूपकों ग्रौर बिम्बों के कारण कवि की व्याकुलता शब्दों में ही गुम हो जाती है ।

ठीक इसके विपरीत दूसरे छोर पर ऐसी सार्थक प्रभावी कविताएँ हैं जो पूरी सतर्कता के साथ जीवन में फैली विसंगतियों को उजागर करती हैं । समकालीन समाज के उन विरोधाभासों को सामने रखती हैं जिसे छुपाये रखने की कोशिश पूरी चालाकी के साथ शोषक वर्ग करता है । राधेलाल

विजधावने की जो कविताएँ मानवीय शोषण और सामाजिक विकृति के खिलाफ आवाज देती हैं। वह आवाज पाठक की शिराओं को झनझनाती चली जाती हैं। यह आवाज न अस्पष्ट है और न ही अमूर्त। इसे समझने के लिये किसी भाषिक विद्वता की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन कविताओं के पीछे एक वैचारिक पृष्ठभूमि है। एक निश्चित तर्क है और चीजों को समझने के लिये जरूरी सतर्क दृष्टि है—

बच्चे को किताब का पाठ
याद क्यों नहीं होता
याद क्यों होती है
बाहरी बातें
मसलन
पिता की फटी कमीज
और मां की थकन के बारे में

जिन्दगी की समस्या से कोई सरोकार नहीं रखने वाली शिक्षा पर यह कितनी सार्थक व्यंग्योक्ति है। इसी तरह वर्दियों के भीतर छुपे वहशी चेहरों को किस प्रभावी ढंग से कवि ने बेनकाब किया है—

सड़कों पर वर्दियां हैं
वर्दियों में आतंक
अपराध तलाशती वर्दियां
औरतों के पेटीकोट में झांकती हैं
और उनसे
चरित्र का खेल खेलती हैं——(वर्दियां)

व्यवस्था के विरोध में लड़ते हुए आदमी को किस तरह अलग थलग कर उसके अस्तित्व को खत्म कर दिया जाता है और लोग चुपचाप तमाशबीन बनकर देखते रहने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते इस पर चुभती हुई अभिव्यक्ति है—

यह तो जंगल को चाहिए था
पेड़ के लिए
आरे के खिलाफ
लड़ाई शुरू करता
पर हरेपन के लिए

जंगल पतझर
कोपंले ढूंढ़ता रहा
और अपनी सुरक्षा का
गणित सोचता रहा——(आरा)

नगरों को खूबसूरत बनाने के नाम पर जिस तरह मजदूरों और निचली श्रेणी के काम करने वाले लोगों को शहर के बाहर किसी बेहद गंदी जगह पर कीड़े मकोड़ों की तरह फेंक दिया जाता है फिर उन्हें जाहिल और गंवार कहा जाता है। आभिजात्य शहर जिनकी ओर घृणा और हिकारत की नजरों से देखता है उन पर कवि की दृष्टि जब पड़ती है तो कविता कितनी तेजी के साथ मन को झकझोरती है—

कितने खराब हैं
झोपड़ पट्टियों के लोग
बदबूदार हवा में
बीमारी के कीठाणु
फैलाते रहते हैं।
और सामाजिक अपराध बढ़ाते हैं
झोपड़ पट्टियों के लोग

यही संवेदनशील दृष्टि जब गाँवों की ओर मुड़ती है तब गांवों से निकलने के लिये मुडेरों पर बैठे गिद्धों की फड़फड़ाहट कविता में प्रतिध्वनित होने लगती है—

हमारे गांव का इतिहास
बनिये की दूकान
और मण्डी के खातों में लिखा है
जो शोकग्रस्त
आधे झण्डे सा झुका है. (गांव से बाहर)

इधर आदिवासियों के उत्थान के नाम पर शहरों से गये हुए अधिकारी, कर्मचारी, ठेकेदार और दूसरे लोग किस तरह आदिवासी लड़कियों के जिस्मों के साथ-साथ सम्पूर्ण आदिवासी जन जीवन का शोषण करते हैं उस पर एक तीखी प्रतिक्रिया—

हिनहिनाते शहरी घोड़े
अब जंगल आ गये
और तुम्हारे लंहगे में बैठ गये

और तुम
बार बार
गर्भवती बनते हुए
स्वागत समारोह में
व्यस्त हो गयीं
तुम्हारे वन गीतों की
कैसी हत्या हो गयी
ओ आदिवासी लड़की ।

दूसरे छोर पर ऐसी ही सार्थक और प्रभावी कविताओं की वह तीखी बुनावट है जिसे पढ़कर सहसा कवि की सचेत दृष्टि और समकालीन प्रश्नों को चुनौती पूर्ण उत्तर देने के लिये व्यग्र तमतमायी हुई मुद्रा दिखलाई पड़ती है। मानवीय संवेदना का यह प्रखर और जीवन्त रूप ही आज के लिये प्रासंगिक और जरूरी है । यही मनुष्य के सामने उपस्थित ज्वलंत प्रश्न है और उससे जूझने के लिये इससे साक्षात्कार जरूरी है । राधेलाल विजधावने के पास बारूद की प्रचुर मात्रा है । देखना केवल यह है कि इसका अधिकतम उपयोग आतिशबाजी के लिये होता है या युद्ध के लिये ।

राधेलाल बिजधावने
का संग्रह—'कमीज'

—त्रिभुवन पांडे

कविता की सतत् उपस्थिति—ज़िन्दगी के इर्द-गिर्द

■ सुमंगल रहीम

ज्यूरुट वैंगर के उपन्यास का एक पात्र कहता है—"शहीद होना ग्रासान है लेकिन एक विचार की खातिर निन्दा सहते हुए जीवित रहना कहीं ज़्यादा मुश्किल है।" जार्ज लूकाच के यहां यह उद्धरण ग्रापको कई जगह मिलेगा ग्रौर ग्राकस्मिक नहीं है कि मुझे यह कथन एक कविता-संग्रह (**ऋण गुणा ऋण—राजेन्द्र कुमार**) की समीक्षा लिखते वक्त याद ग्रा रहा है। ऐसे ग्रनेक कवि ग्राज हैं जिनकी रचनात्मक मुद्रा शहादती किस्म की है। इसीलिए लोगों का ध्यान ग्रपनी ग्रोर ग्राकृष्ट करने में उन्हें थोड़ी सहूलियत हो जाती है। लेकिन जो इस शहादती मुद्रा को एक लटके की तरह इस्तेमाल नहीं करते बल्कि ईमानदारी से विचारपूर्ण लेखन के प्रति समर्पित हैं उन्हें प्रायः उपेक्षा ही मिलती हैं। यह उपेक्षा सहते हुए रचना में जीना कोई ग्रासान बात नहीं है। इस मारक उपेक्षा को सह कर रचनाशील बने रहना रचनाधर्मिता की ग्रान्तरिक सप्राणता ग्रौर उर्जस्विता का प्रतीक है। "**ऋण गुणा ऋण**" की कविताग्रों के माध्यम से हम ऐसी रचनाधर्मिता से परिचित होते हैं।

इन कविताग्रों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि ये प्रायः उन सभी उपकरणात्मक कारकों का बहिष्कार करके भी कविता बनी रह सकी हैं जिनके द्वारा ग्रक्सर "उक्तिग्रों," को "कविता" बनाकर पेश किया जाता है। संग्रह की पहली ही कविता, '**मिट्टी के ढेले**," ग्रपनी सादगी में जितना कुछ हमसे कह लेती है वह ग्रपने ग्राप में, ग्रनुभव ग्रौर ग्रभिव्यक्ति—दोनों के स्तर पर इस कविता की एक सार्थक उपलब्धि है। हिन्दी के प्रकृति काव्य में ऐसी उक्तियाँ कम नहीं हैं जिनमें "**कवितापन**" पैदा करने के लिए बरसात में भीगती मिट्टी से उठने वाली "सोंधी" गन्ध, का ज़िक्र बहुत ही मुग्ध भाव से किया जाता रहा है। मिट्टी के प्रति एक तरह के रोमानी सुलूक का उदाहरण है यह। **मिट्टी के ढेले** से राजेन्द्र कुमार का सुलूक इमसे एकदम ग्रलग है। बारिश में भीगता, घुलता-पिघलता मिट्टी का ढेला ही

है यहाँ भी लेकिन, कवि यहाँ उससे उठने वाली सोंधी गंध से पुलकित होता हुआ नहीं मिलता बल्कि बेचैन होता हुआ मिलता है—उन कारणों को न समझ पाने से जिनके परिणामतः उसका **"मन और उदास हो गया है।"** कविता शुरू होती है इन पंक्तियों से—

सहकर सूरज का प्रखर ताप
मिट्टी के छोटे-छोटे/कुछ ढेले
पत्थर बन निस्पन्द पड़े थे।

कितनी करारी चोट है उस तथाकथित संवेदनशीलता पर जिसका प्रदर्शन करके अभिजातीय संस्कारों वाला वर्ग अपनी अकर्मण्यता को व्यक्तित्व की सुकोमलता के आकर्षण से मण्डित करता रहा है। पसीना बहाना और सूरज को सीधे अपने नंगे बदन पर झेलना जिसकी नियति है उसे तो जैसे अपने में संवेदनशीलता का कोई भी लक्षण प्रगट होने देने का अधिकार ही नहीं है। श्रम और संवेदनशीलता की यह आभासी विच्छिन्नता व्यक्तिगत स्वार्थों के आधार पर पनपने वाली अप्राकृतिक मानसिकता की देन है। लेकिन यह छोटी-सी कविता इस मानसिकता के प्रति कवि का सांवेगिक आक्रोश मात्र व्यक्त करके खत्म नहीं हो जाती। सीधे ज़िन्दगी में, सीधे अपनी नितान्त कुदरती ज़मीन पर पड़े **"मिट्टी के ढेले"** में कवि जितना जो कुछ यहां देख लेता है और जिस तरह उससे अपना तादात्म्य अनुभव करता है, वह सब हमें अपने समाज के भोले-भाले, निहायत चालाकी-रहित और ग़ैर-बनावटी श्रमशील चरित्र की असहायता से अवगत कराता है। समाज को बनावटी बनाए रखने में ही अपना हित मानने वाले स्वार्थी तत्वों का दबाव निहायत कुदरती और ग़ैर-बनावटी आदमीयत में जिस जड़ता का आभास करा रहा है वह आभास टूटता है जब हम देखते हैं कि **"बड़ी-बड़ी बूंदें आई/घुल गये-पिघल गये/मिट्टी के ढेले—आप ही आप/और फिर तरल बन बह गये चुपचाप।"** बेशक एक हल्की-सी आत्म-विसर्जन की ध्वनि भी यहाँ हैं लेकिन इसमें आत्मदान का वह वैयक्तिक वर्ष कतई नहीं है जो अज्ञेय जैसे कवि को आदेशात्मक कामना या कामनात्मक आदेश के लहज़े में यह कहने को प्रेरित करता हैं कि "यह दीप अकेला स्नेहभरा/है गर्व भरा मदमाता, पर/इसको भी पंक्ति को दे दो।" "मिट्टी के ढेले को यह आदेश देने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि ग्रीष्म के आतंक के विरुद्ध वर्षा की जीवन-दायी शीतलता लेकर आनेवाली जलधारा तुम एकलय हो जाओ। मिट्टी के ढेले तो चुपचाप ही उसमें एकलय हो जाते हैं और इस प्रकार जो "पत्थर

की तरह निस्पन्द" समझ लिए गए थे वे अपनी तरल संवेदननीयता का मर्मस्पर्शी प्रमाण हमें देते हैं ।

कोई कह सकता है कि यह तो खुश होने की बात है, इसमें ऐसा क्या है जो कवि को अन्त में यह कहना पड़े कि "**मन और उदास हो गया है ।**"

दर असल, इस छोटी-सी कविता में उदासी के अनुभव के दो स्तर हैं । "**पत्थर बन निस्पन्द पड़े**" मिट्टी के ढेलों को देखना एक तरह का अनुभव है । और फिर उन्हीं को "**तरल बन बह गए चुपचाप**" देखना अनुभव का एक दूसरा स्तंर है । "मन **और** उदास हो गया है" में "**और**" शब्द ज़ाहिर करता है कि अनुभव का दूसरा स्तर ज़्यादा उद्वेलित करने वाला है । इस बात को समझने में केवल हमारा "**इमोशनल**" होना सहायक नहीं हो सकता बल्कि सहायक होगा सामाजिक अनुभव की '**इमोशनल**' विसंगतियों से वाकिफ़ होना । मिट्टी के ढेलों का पत्थर-सरीखा निस्पन्द दीखना भले ही एक आभास मात्र हो लेकिन जब उनके आन्तरिक स्पन्द को प्रमाणित करने वाले तन्तुओं की संवेदनशीलता से हमारा इस तरह सामना होता है कि बूँदों का ज़रा-सा स्पर्श मात्र चुपचाप उन्हें तरल बना दे तो हमें अपने प्राथमिक आभास की याद कहीं गहरे कुरेद जाती है । हम और उदास होते हैं इसलिए कि हमें अपनी ही संवेदनीयता या सह-अनुभूति में कहीं खोट नज़र आने लगती है कि आखिर इतने स्पन्दनशील मिट्टी के ढेलों को कैसे हम "पत्थर-सा निस्पन्द" समझ बैठे थे ।

शुरू की एक छोटी-सी कविता की इतनी विस्तृत व्याख्या हमने इसलिए की कि "**ऋण गुण ऋण**" के मूल कथ्य को बेहतर ढंग से समझा जा सके । "**पावस की शाम,**" "**गुलाब,**" "**आदान-प्रदान**" "**इतिहास और नदी**" जैसी कविताएं अपनी संक्षिप्त और सघन बुनावट में इसी तरह की कविताएं है जहाँ **प्रकृति का अप्राकृतीकरण किये बग़ैर प्रकृति को मौजूदा मानवीय समाज के संदर्भ में समझने की चेष्टा की गई है ।**

आजादी के बाद भारत को जनतन्त्र के नाम पर जो व्यवस्था मिली उसकी विडम्बना को हमारी रचनात्मक बेचैनी का लक्ष्य बनाने के लिए "**ऋण गुणा ऋण**" का कवि कहीं प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण को अपना माध्यम बनाता है ("**बारिश में पहले अंधेरा,**" "**हवाएं और अख़बार**" शीर्षक (कविताएँ) और कहीं व्यंग्य की बारीकी से काम लेता है (जैसे "**नया बरस**", "**अतिरिक्त चेहरे**" "**सभ्यताक्रांन्त**" "**आदमी और कपड़ा**", "**चन्द्रग्रहण को देखकर**" और "नामी आदमी" में) ।

"बारिश से पहले का अन्धेरा" शीर्षक कविता इमरजेन्सी लागू किये जाने के महीनों में (सितम्बर अक्टूबर सन् 75 में) एक लघु पत्रिका (नाम याद नहीं आ रहा है) में छपी थी। बारिश से पहले के अन्धेरे में आपातकाल के बावजूद **अदृश्य आश्वस्तियाँ** देखते हुये सक्रिय बने रहना इस कविता को जिस तरह सम्भव बनाता है, **वह आपात्काल के दौरान लिखे जाने के दंभ से युक्त तमाम साहित्य के बीच अपनी अलग और शायद अकेली मिसाल है।**

अंधेरा न डर का पर्याय है, न कारण
न कारण है डर का न पर्याय
अन्धेरा डर को फींचता है/खींचता है
खौफ/जज़्ब करता हुआ
अपने में सियाही को
छाता है आसमान पर।

यह अन्धेरे की (आपात्काल की) स्तुति नहीं **है** और न ही बलदेव वंशी जैसे कवियों के यहाँ मिलने वाली **"केवल देखने भर की साक्षी"** है। **बारिश से पहले का अधेरा** कविता अन्धेरे के भय से मुक्ति पाने की तरफ़ उठाए जा रहे कदमों की आहट को पहचानने का आवाहन है। **ग़ौर करने की बात है कि आपात्काल के दौरान "त्रिकाल-सन्ध्या में लीन कवियों के आशावाद से इस आवाहन का स्वर एकदम भिन्न है क्योंकि यह आवाहन शिथिल आनुष्ठानिक मानसिकता से नही बल्कि क्रियाशील सामाजिक अकुलाहट से प्रेरित है।"**

व्यंग्यात्मक शैली की कविताओं में कहीं—कहीं व्यंग्य बहुत स्थूल हो गया है (जैसे **"मुक्तिकाम गांधी"** में) लेकिन व्यंग्य की सही और सयमित क्षमता को जिन कविताओं में मौक़ा मिल सका है वहाँ उसका पैनापन कथ्य को धार देता है। ऐसी एकाधिक कविताओं का नामोल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ।

इस संग्रह में कथात्मक शैली की भी कुछ अच्छी कविताएँ हैं जैसे **"ऊँचा कहलाए जाने का मोह", "वे तीन और चौथा मैं", "बीबी से ग़रीबी तक"** और **'पतंग'** इत्यादि। इन कविताओं को लम्बी कविताएँ तो नहीं कहा जा सकता लेकिन इनमें अतिरिक्त कथन का लोभ यदि कवि संवरित कर लेता तो ये रचनाएँ ज्यादा प्रखर बन सकती थीं। कवि कहीं-कहीं स्पष्टीकरण के के मूड में आकर **जब इन कविताओं को सायास लम्बा बनाने लगता है तो कविता के स्वयं प्रभाव डालने के अपने तरीक़े पर कवि का विश्वास जैसे डगमगाता हुआ-सा प्रतीत होता है।** लेकिन इतने मात्र से इन कविताओं का

महत्व क्षीण नहीं हो जाता है। सबसे बड़ी खूबी इन कविताओं की यह है कि इनको बढ़ने से कवि के सामाजिक दृष्टिकोण और सामाजिक संघर्ष में उसकी शब्द और कर्मगत हिस्सेदारी का पता हमें चलता है। कहीं-कहीं तो इन कविताओं की संरचना में **नागार्जुन—जैसी सादगी** है। इनमें वह दुरूहता (**—जो मुक्तिबोध के सामान्य पाठक की समस्या बन जाती है**) **अथवा वह लटके बाज़ी —जो धूमिल के पाठक को अक्सर यान्त्रिक ढंग से महज़ चमत्कृत करके छोड़ देती है —नहीं है।** जैसा कि मैंने कहा कि **"ऋण गुणा ऋण"** की कथात्मक कविताओं में अतिरिक्त कथन, अतिरिक्त स्पष्टीकरण और सरलीकरण का दोष है परन्तु फिर भी अगर ये मुक्तिबोध और धूमिल जैसे सशक्त कवियों की कमजोरियों से बचकर मुक्तिबोध और धूमिल की तरह की तेजस्विता का किंचित भी एहसास हमें करा पाती हैं तो यह कम बड़ी बात नहीं है और जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह बड़ी बात इन कथात्मक कविताओं में हैं। अन्यथा, हो तो अधिकांशतया यह रहा है कि आज की ढेर सारी कविता मुक्तिबोध और धूमिल की दुरूहता मैनरिज़्म का शिकार तो हो रही है लेकिन इन कवियों की ताक़तों का शतांश भी उसमें नहीं आ पा रहा है।

कुछ व्यक्तिगत अनुभवों से प्रेरित कविताएँ भी इस संग्रह में हैं लेकिन इनकी संदर्भित व्यक्तिगतता **आत्मग्रस्तता से अलग क़िस्म की होने के कारण स्वागत योग्य** है। उदाहरण के लिए **"आत्मघाती भाई से"** कविता में आत्मघात जिस कुण्ठा की परिणति है उसके केवल व्यक्तिगत मूल का उल्लेख मात्र करके कवि चुप नहीं रह जाता बल्कि उसकी सप्रश्नता उस कुण्ठा को वस्तुस्थितिगत परिप्रेक्ष्य में सीधे यह मर्मस्पर्शी सवाल उठाने को प्रेरित करती है जो आत्मघात की मानसिकता के विरोध में है—

अब मैं कैसे कह सकता हूँ
कि दुखों पर भी सौ दुख बीते/फिर भी मैंने
देखा है अपने भाई को/हँस कर जीते ?

व्यक्तिगत मूड की ही एक और कविता हैं **"शीशा"** जिसकी अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

जीवन का जो चौड़ा शीशा/मुझे मिला है
इसे कृपा कर/छोटे-संकरे चौखट में
जड़ने का/कसने का/मत करो,
कोई भी प्रयास मत करो।

इन पंक्तियों को उद्धृत करके **'समीक्षा'** (पटना) में सन् 1978 में

प्रकाशित चुनिंदा कविता पुस्तकों का मूल्यांकन करते हुए डा. हर दयाल ने "ऋण गुणा ऋण" के कवि के कवि बारे में जो निष्कर्ष निकाला है वह समीक्षा की भाववादी दृष्टि की सीमा का परिचायक है। **'ऋण गुणा ऋण'** के फ्लैप पर छपी प्रकाशकीय विज्ञप्ति का चश्मा लगाकर उपर्युक्त पंक्तियों से यह निष्कर्ष निकालना कि कवि विचारधारात्मक आग्रहों से सर्वथा मुक्त रहना चाहता है, खुद एक प्रकार का पूर्वाग्रह है। यह ठीक है कि इन कविताओं में कोई "दावा" नहीं है, "फैतवा" नहीं है लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि "फ्लैप" पर छपी विज्ञप्ति के संकरे चौखट में कवि का **"शीशा"** आप जड़ते भी जायें और कवि की इस चीख को (कि—"छोटे संकरे चौखट में जड़ने का प्रयास मत करो") वाहवाही भी देते जायें। **"शीशा"** में अपने तटस्थता तो देखी लेकिन चुनौती देने वाला यह स्वर नहीं सुना:—

> **भले ही अपनी/पथरीली धरती का**
> **कोई कंकड़ ऐसा फेंको**
> **टूट जाय यह शीशा चूर-चूर होकर**
> **बिखरें इसकी किरचें/दूर-दूर होकर।**

कहने का आशय यह कि **"ऋण गुणा ऋण"** के कवि की विचार-धारात्मक प्रखरता और उसके तकाज़े इस संग्रह की कविताओं में जिन रूपों में आये हैं, रेखांकित करने की जरूरत है। **"यूरेका-यूरेका", "पुतली घर का भोंपू," "इतवार का दिन", "ग़लत फ़हमी"** और **"वे तीन और चौथा मैं"** जैसी अनेक कविताओं अनेक कविताओं से होते हुए यदि आप **"शीशा"** से गुजरें तो हर दयाल जी द्वारा कवि पर की गई दया से बचकर आप **"ऋण गुणा ऋण"** की कविताओं को ज़्यादा सही ढंग से समझ सकेंगे।

कुछ **"पूर्वग्रही"** लोग **"कविता की वापसी"** का नारा लगा रहे हैं और सन् 80 को कविता की वापसी का वर्ष घोषित करने में जी जान लगाये दे रहे हैं। **"ऋण गुणा ऋण"** संग्रह ऐसे लोगों के दृष्टि दोष को उजागार करने के लिए चुनौती है। यह संग्रह सन् 78 में छपा था और **यह प्रमाणित करता है कि कविता कहीं गई नहीं थी जो सन् 80 में लौट आई हो बल्कि जिन्दगी में थी—यहीं हमारे इर्द गिर्द, समस्याओं से जूझती हुई। पूर्व ग्रही लोग पता नहीं किन "खोहों" में बैठे रहे और जब निकले तो सन् 80 में उन्हें एकायक लौटती कविता से साक्षात्कार हो गया।**

◻

विचारधारा मंच/चंडीगढ़, द्वारा बिहार प्रेस बिल का विरोध

बिहार प्रेस बिल का जोरदार विरोध करते हुए संवाददाताओं और पत्रकारों की नौ यूनियनों द्वारा गठित 'ज्वाइंट एक्शन कमेटी' ने बिल को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन और तथा-कथित प्रेस-स्वतंत्रता का मजाक उड़ाने वाला कहा है। 'एडिटर्स-गिल्ड' के अनुसार प्रेस को भयाक्रांत करने के उद्देश्य से पास किया गया यह एक क्रूर बिल है। वास्तव में अपने घोषित उद्देश्यों के विपरीत इसका मकसद विरोध की हर उस आवाज को कुचल देना है जो जुल्म और शोषण के खिलाफ उठती है, जनता को उसके आर्थिक-सामाजिक हालातों के प्रति जागरूक करती है। बेशक बड़े अखबार और सांसद बिल का विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं (जैसे लोक सभा में विरोधी दल द्वारा वाक आउट, बिल की प्रतियां फाड़ कर फेंकना) लेकिन इसका असल निशाना, और इसके शिकंजे में वही पत्रकार-संवाददाता जकड़े जाएंगे जो राज्य की क्रूरता को उद्घाटित करते हुए जनता की आवाज बनते हैं।

हाल ही का उदाहरण बिहार के युवा पत्रकारों श्रीकांत, नवेंदु, सिरिल मैथ्यू पर सरकार द्वारा दफा 107 के अंतर्गत दायर किया गया मुकद्दमा चला कर उन्हें मानसिक यंत्रणा देने का है। प्रेस बिल सरकार को यह छूट देता है कि इन पत्रकारों की गतिविधियों पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दे, आवाज को गले में ही घोंट दे और उन्हें गिरफ्तार करके अनिश्चित काल तक के लिए जेल में डाल दे।

सरकार के इस नंगे दमन की नीति की निंदा करते हुए हम सभी लेखकों-पत्रकारों को एक जुट होकर इस दमन का विरोध करने की अपील करते हैं।

—सुरेन्द्र मनन, तरसेम गुजराल, अवतार जौड़ा, नरेन्द्र कुमार, परमदीप मल्लर, सुरेन्द्र मंथन, कमलेश भारतीय, रमेश आनंद, जंग बहादुर।

□

मध्य प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ के सचिवालय ने बिहार प्रेस बिल की भर्त्सना करते हुए प्रदेश की समस्त 45 इकाईयों से उसकी सक्रिय निंदा

करने का आह्वान किया है। कटनी में प्रगतिशील लेखक संघ के सचिव और "यात्रा" के सम्पादक श्री अनिल खम्परिया ने बिहार प्रेस बिल की निंदा करते हुये 24 घंटे की भूख हड़ताल की है और पत्रकार संगठनों के कार्य के प्रति एकजुटता प्रदर्शित की।

□

1982-83 के कविता संग्रहों पर धूमिल पुरस्कार की योजना "परिक्षेत्र" पत्रिका ने घोषित की है। पुरस्कार राशि 500.00 है। निर्णायक डा० विश्वनाथ प्रसाद होंगे। प्रकाशक 5 प्रतियां परिक्षेत्र प्रकाशन, सी, 11/20, पितरकुंडा, वाराणसी को भेजें।

नोट— "पहल" इस तरह के पुरस्कार प्रोत्साहनों की प्रशंसा करती है। लेकिन जब एक ही निर्णायक हैं तब 5 प्रतियों की मांग को आज की कठिन प्रकाशकीय स्थिति में अनुचित मानता है।

□

मंगलेश डबराल को बधाई : अंक 19 में हमने युवा वामपंथी कवि मंगलेश डबराल की कुछ कविताएं छापी थीं। उन्हें उनके पहले कविता संग्रह "पहाड़ पर लालटेन" पर 5000 रुपयों का ओंप्रकाश सम्मान पुरस्कार मिला है। श्री डबराल को 500.00 एक वर्ष तक रचनात्मक सम्मान के रूप में मिलेंगे। प्रगतिशील कविता में अपनी पहचान के कारण इस सम्मान पर "पहल" उनका अभिनंदन करती है।

□

विनोद भारद्वाज को भारत भूषण स्मृति पुरस्कार : "साक्षात्कार" के सितम्बर 1981 अंक में प्रकाशित उनकी कविता "हवा" पर विनोद भारद्वाज को यह पुरस्कार श्री विष्णु खरे के निर्णय पर दिया गया है। 1950 में जन्मे श्री विनोद भारद्वाज का पहला कविता संग्रह "जलता मकान" दो वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। कवि के अलावा वे पत्रकार और कला समीक्षक हैं। श्री विष्णु खरे ने कवि की पुरस्कृत कविता "हवा" को गहरी सामाजिक टिप्पणी, असंदिग्ध प्रतिबद्धता और बहु आयामीय दृष्टि का नमूना माना है।

□

गजानन माधव मुक्तिबोध पर पहला उल्लेखनीय मोनोग्राफ प्रकाशित हो चुका है। इसे मुक्तिबोध के साथी और आलोचक प्रमोद वर्मा ने तैयार किया है। हिन्दी के किसी शीर्ष प्रगतिशील साहित्यकार का यह पहला मोनोग्राफ है। इसे "पहल" ने प्रकाशित किया है। इसका कला सम्पादन सुरेन्द्र राजन जैसे विख्यात वामपंथी छायाकार और चित्रकार ने किया है। इसे फोटो सेटिंग से छापा गया है और यह वास्तविक मूल्य पर 15.00 रुपये में "पहल" कार्यालय से मंगाया जा सकता है।

□

भीष्म साहनी के सम्पादन में प्रगतिशील लेखकों के राष्ट्रीय संगठन ने अपना पहला बुलेटिन "लोटस इन्डिया" जारी कर दिया है। अब यह नियमित प्रकाशित होगा। इसमें नार्ला वेंकटेश्वर राव और साहित्य अकादमी के विवाद, रघुवीर सहाय और वे दूसरे उदाहरण जो बुर्जुआजी द्वारा अभिव्यक्ति की आजादी पर आक्रमण के हैं, के अलावा फिलिस्तीनी संघर्ष चक्र और उनकी कविताओं को सम्मिलत किया गया है। बहस के लिये असगर अली इन्जीनियर का निबन्ध "साहित्य और वैचारिक प्रतिबद्धता" जारी किया गया है।

इस बुलेटिन को 8/30, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली–110008 से इसे 10.00 वार्षिक में बुलवाया जा सकता है।

▣

पहल के कई ग्रंक पहले भी देखे थे, नया ग्रंक भी देखा ।

इसमें सन्देह नहीं कि ग्रापलोग जागरूक भी हैं ग्रौर कुशाग्रवुद्धि भी हैं । पर एक बात जो खटकती है, वह यह है कि ग्रापलोग जिस प्रकार वर्तमान शासकवर्ग का विरोध कर रहे हैं ग्रौर बात-बात में ढाल-ढालकर उसकी निन्दा कर रहे हैं, ग्रौर सही रूप में कर रहे हैं, क्या उसका fall out समाजवादी संघर्ष के पक्ष में जा रहा है या चरणसिंह ग्रौर बाजपेयी ऐसे कथित विरोधियों को उसका फायदा मिलेगा ? मैं इसीं कारण जब विरोध करता हूँ तो पहले ही यह पेश बन्दी करके लोगों को सावधान कर देता हूँ कि मेरी ग्रांखों में ये सांपनाथ नागनाथ हैं, इनकी तू तू मैं मैं में, थुक्काफजीहत में कोई सार या तत्व नहीं है । मैं समझता हूँ कि हिन्दी का सारा वामपक्षी साहित्य इस सम्बन्ध में उचित रूप से सावधान नहीं है । नतीजा यह है कि ग्रालोचना ठोस ग्रौर सही होते हुए भी, कहीं पर उसमें ऐसी कुछ कमी रह जाती है, जिससे उसके तीर तुक्का बनकर बिखर जाते हैं ।

—मन्मथनाथ गुप्त

□

"पहल" का 19 वां ग्रंक प्राप्त हुग्रा । इस पत्रिका का ऐतिहासिक महत्व उसी प्रकार रेखांकित किया जायगा जिस प्रकार एक जमाने की "सुधा", "चाँद", "हंस", "कृति" ग्रादि पत्रिकाग्रों का । लेकिन क्या ग्रापको नहीं लगता कि ग्राजकल की बहुत मोटी ताजी पत्रिकाएँ दूसरे ग्रर्थ में ग्रधिकाधिक संख्या में लेखकों को समेट कर चलने वाली पत्रिकाएँ एक दूसरे पहलू पर सावधान नहीं रहतीं—रचना की गुणवत्ता वाले पहलू पर । लेखन कर्म को ग्रधिकाधिक लोगों का व्यापार बनाने के साथ गुणों को उन्नत करने पर भी ध्यान देना चाहिये ऐसा मेरा ख्याल है । ग्राज किसी न किसी ग्रावेश में इस पहलू को उपेक्षित किया जा रहा है ।

—शंभुनाथ, कलकत्ता

□

"पहल" ने जिस सुरुचि और रचनात्मकता को विकसित किया है उसके लिये हमें बड़ा गर्व है। वह अकेली ही कृति पत्रिका है हमारे बीच। प्रगतिशील मूल्यों से सम्बद्ध पत्रिका आज निकाल पाना बहुत कठिन है। या तो वहाँ वैचारिक जड़ता आ जाती है या फिर वह अखबार का रूप लेने लगती है। कई पत्रिकाओं का यह हश्र हुआ है। मुझे प्रसन्नता है कि "पहल" ने अपने को प्रगतिशील मूल्यों से जोड़कर कला मूल्यों और रचनात्मक गहराईयों की रक्षा की है।

—**विजेन्द्र, भरतपुर**

रज़ा पुरस्कार

पेरिस में बसे मध्यप्रदेश के मूल निवासी श्रेष्ठ चित्रकार **श्री सैयद हैदर रजा** ने **मध्यप्रदेश कला परिषद्** के माध्यम से चित्रकला ग्रौर कविता के लिए एक महत्वपूर्ण पुरस्कार की स्थापना की है, जो बारी-बारी से मध्यप्रदेश की युवा प्रतिभाओं की कविता ग्रौर चित्रकला के लिए प्रदान किया जाता रहेगा।

इस वर्ष 1 जनवरी, 1981 से 30 सितम्बर, 1982 तक की ग्रवधि के बीच प्रकाशित मध्यप्रदेश के किसी युवा कवि (जिसकी ग्रायु 30 सितम्बर, 82 को 45 वर्ष से ग्रधिक न हो) कविता-पुस्तक प्रर प्रदान किया जायेगा।

पुस्कार की राशि 5000/– रुपये होगी

मध्यप्रदेश कला परिषद् को श्री रजा ने इस पुरस्कार के लिए राशि प्रदान की है।

मध्यप्रदेश कला परिषद् ने श्री रज़ा द्वारा किये गये इतने बड़े योगदान ग्रौर युवा कलाकारों के लिए उतकी गहरी रचनात्मक चिन्ता को देखते हुए ही कृतज्ञतावश इस पुरस्कार का नाम **रजा पुरस्कार** रखा है।

स्वयं रचनाकार या कोई भी काव्य प्रेमी **सचिव, मध्यप्रदेश कला परिषद्, रवीन्द्र नाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल**–462003 के नाम प्रकाशित कविता-संग्रह की प्रति पांडुलिपि, पुस्तक प्रकाशन के महीने ग्रादि के ब्यौरों ग्रौर ग्रायु सम्बन्धी विवरण 30 ग्रक्टूबर, 1982 तक भेज सकते हैं। भेजे गये विवरण के लिफाफे पर स्पष्ट रूप से **"रजा पुरस्कार"** ग्रवश्य ग्रंकित करें। निर्णायक इस तरह की भेजी गयी कविता-पुस्तक के ग्रलावा उक्त समयावधि में प्रकाशित ग्रन्य कविता संकलनों को विचार में लेने के लिये भी स्वतन्त्र होंगे।

मध्यप्रदेश कला परिषद्

रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल–462003

फोन : 63772 **तार** : परिकला

खिलेंगे फूल उस जगह...

रायपुर शहर के जय-स्तंभ चौक पर बने सादे स्मारक पर पता नहीं आपने गौर किया है या नहीं ? 10 दिसम्बर, 1857 के दिन इसी जगह वीर नारायण सिंह को अंग्रेजों ने तोप के गोले से उड़ा दिया था ।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में नामी-गिरामी योद्धाओं के साथ-साथ दूर-दराज के आदिवासी अंचलों में भी असंख्य लोगों ने कुर्बानियाँ दी थीं ।

आदिवासी अंचलों में यह लड़ाई केवल राजनैतिक ही नहीं वरन् आर्थिक सामाजिक मोर्चों पर भी सुलग उठी थी ।रायपुर जिले के ग्राम सोनाखान में जन्मे वीर नारायण सिंह के लिए यह लड़ाई वहाँ के सूदखोरों, जमाखोरों और अन्य शोषकों के खिलाफ भी अभियान था । ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सही रूप शोषण के इन्हीं चेहरों में बेनकाब होता था ।

15 अगस्त, **1947** को हमें राजनैतिक आजादी हासिल हुई, परन्तु समय पर आधारित शोषण-विहीन समाज रचने का वीर नारायण सिंह द्वारा शुरू किया गया अभियान अब भी जारी है ।

सू० प्र० सं० / 2094 / डी / 82

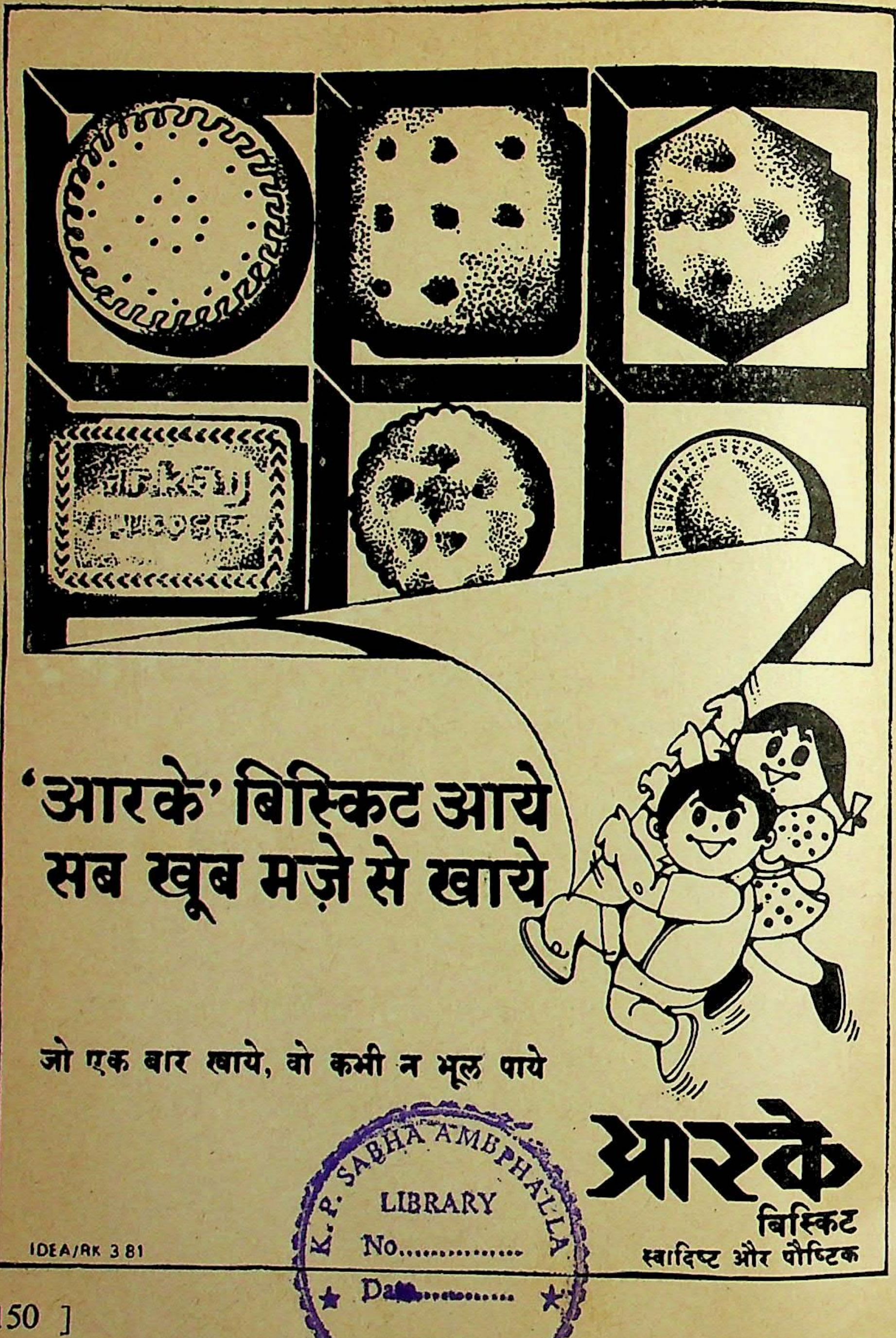
मध्य प्रदेश में

आदिवासियों एवं हरिजनों की उन्नति

- ○ ○ आदिवासी क्षेत्रों में 13997 प्राथमिक, 2507 माध्यमिक तथा 381 उच्चतर माध्यमिक शालाओं का संचालन
- ○ ○ आदिवासी क्षेत्रों में उत्तम शिक्षण के लिए 6 आदर्श विद्यालयों की स्थापना
- ○ ○ कन्या शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 3 कन्या परिसरों की व्यवस्था
- ○ ○ शिक्षण संस्थाओं को सुसज्जित करने का व्यापक कार्यक्रम
- ○ ○ 2013 छात्रावासों एवं 207 आश्रम शालाओं में लगभग 50,000 बच्चों को छात्राबास की निःशुल्क सुविधाएं
- ○ ○ 221 खेल परिसरों में खेलकूद का व्यापक कार्यक्रम
- ○ ○ करीब 3 लाख 40 हजार छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्तियां
- ○ ○ आर्थिक उन्नयन के लिए कृषि, स्वरोजगार तथा प्रशिक्षण की व्यापक योजनाएं
- ○ ○ उप-योजना क्षेत्रों में पहले 5 वर्ष तक निःशुल्क सिंचाई सुविधा
- ○ ○ सहकारी समितियों के माध्यम से उचित दामों पर वस्तुओं का प्रदाय
- ○ ○ उत्पादनों की खरीदी तथा ऋण वितरण
- ○ ○ उपभोक्ता ऋण एवं बिना ब्याज ऋण की नई योजनाएं
- ○ ○ पांच क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण और छः विशेष अभिकरणों के माध्यम से विकास की नई पहल
- ○ ○ आदिवासी विकास प्राधिकरणों को स्थानीय विकास कार्यों के लिए 25–25 लाख का अतिरिक्त आवंटन
- ○ ○ करीब 14 लाख बच्चों एवं माताओं को प्रतिदिन निःशुल्क पोषण आहार
- ○ ○ आदिवासी क्षेत्रों में सेवा के लिए शासकीय सेवकों का अलग संवर्ग

पिछड़े लोगों के प्रति सजग सरकार

सू० प्र० सं० / 2094 / डी / 82


'आरके' बिस्किट आये
सब खूब मज़े से खाये
जो एक बार खाये, वो कभी न भूल पाये
आरके
बिस्किट
स्वादिष्ट और पौष्टिक
IDEA/RK 3 81

बीस सूत्री कार्यक्रम में वानिकी-क्षेत्र का योगदान

मध्य प्रदेश : देश का हृदय-प्रदेश

हमारे 1.544 लाख हेक्टेयर वन-क्षेत्र में देश की बहुत सी महत्वपूर्ण नदियों के 40 प्रतिशत से अधिक जलग्रह-क्षेत्र है।

मध्य प्रदेश को हरा भरा बनाये रखना जरूरी है।

वानिकी क्षेत्र का योगदान

लगभग 180 करोड़ रु० का वन राजस्व 7 करोड़ मानव दिवस का रोजगार : समाज के कमजोर वर्ग को दूर-दराज के पिछड़े क्षेत्रों में निस्तार—सुविधा, मजदूरी, वनोपज-संग्रह आदि के रूप में 90 करोड़ रु० से अधिक की अर्थ-व्यवस्था का संचार।

उपलब्धियाँ

पिछले दो दशकों में 3 लाख है, से अधिक क्षेत्र में रोपवन किसी भी राज्य की तुलना में अधिक राष्ट्रीय उद्यानों (8) और अभयवनों (26) की स्थापना।

महत्वाकांक्षी सामाजिक-वानिकी कार्यक्रम

चालू वर्ष में 35 करोड़ पौधों का रोपण

वन हमारे लिए हैं : भावी पीढ़ी के लिए उनकी रक्षा करिए।

सू. प्र. सं. / 2094 /–डी / 1 / 82

पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़

हिन्दी प्रकाशन

रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य में उल्लिखित वस्त्राभरणों का अध्ययन	डा० लल्लन राय	50.00
मध्यकालीन बोध का स्वरूप	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	10.00
आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास	डा० अतुलवीर अरोड़ा	36.00
गोसटि गुरु मिहरिवानु (हरि जी कृत)	डा० गोविन्दनाथ राजगुरु (सम्पादक) गोसटि परिचय—डा० सिद्धेश्वर वर्मा	40.00
गुरु प्रताप सूरज (संक्षिप्त)	डा० जयभगवान गोयल (सम्पादक)	25.00
गुरु शोभा	डा० जयभगवान गोयल (सम्पादक)	5.00
जंगनामा गुरु गोविन्द सिंह	डा० जयभगवान गोयल (सम्पादक)	2.00
गुरु गोविन्दसिंह : विचार और चिन्तन	डा० जयभगवान गोयल	2.40
वीर कवि दशमेश	डा० जयभगवान गोयल	1.80
भक्ति कल्पद्रुम (चन्दू लाल कृत)	सम्पादक : डा० नरेश	10.00
स्तवन मञ्जरी (चन्दू लाल कृत)	सम्पादक : डा० नरेश	8.00

सैक्रेटरी

पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी

चण्डीगढ़ – 160 014

मेरी आवाज तक अपराध है
मेरे विचार तक अराजक हैं
यह सब इसलिये कि मैं उनकी ताल पर नहीं गाता
जब अकस्मात और निर्दोष भाव से
मैं ताकता हूं आसमान को
तो वे मेरी दृष्टि का उन्नयन नापते हैं
मेरे गीतों की पंक्तियों का रहस्य
जानने के लिये
वे मेरे पैरों के निशानों की मिट्टी को
प्रयोगशाला में परीक्षण के लिये भेजते हैं
मेरे विचारों में चेतना की आग मंद करने के लिये
मेरा पीछा करती है पुलिस

चेरबंड राजू : तेलगू कवि

मृत्यु : 2 जुलाई 1982